अज्ञान का अन्त ज्ञान में

अज्ञान का अन्त अनन्त ज्ञान में होता है। अज्ञान वहीं है जहाँ ज्ञान की जगह और कुछ प्रतीत होता है।

नहीं है जहाँ ज्ञान वहीं अज्ञान का प्रभाव है। प्रज्ञा से ही ज्ञान प्रकाशित होता है। प्रकाश ने अन्धकार देखा ही नहीं, जिसने प्रकाश में देखा है वही अन्धकार की चर्चा करता है।

अज्ञान में कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों एवं मन और बुद्धि द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है उसे ही ज्ञान में देखा जाता है।

अज्ञान में हम जो कुछ अपना मान लेते हैं उसी से सम्बन्ध जुड़ जाता है। जिसे हम सुखद मानते हैं उसी से आसक्ति हो जाती है। जिसे हम दुखद मानते हैं उसी से द्वेष हो जाता है।

सम्बन्धित शरीरों को प्रीतिपूर्वक अपना मानने से मोह हो गया। धन को अपना मानने से लोभ हो गया। अपना अधिकार मानने से अभिमान हो गया। ज्ञान में न देखना ही अज्ञान है।

ज्ञान में देखने से, प्रत्येक आरम्भ के पीछे अनारम्भ परम तत्व की अनुभूति होती है। प्रत्येक आदि के पीछे अनादि सत्य का

बोध होता है। प्रत्येक उत्पन्न होने वाले के पीछे अनुत्पन्न सत्ता की महिमा का पता चलता है।

इसी प्रकार अन्तवान पदार्थों के पश्चात् अनन्त का अनुभव होता है। अनन्त में ही ज्ञान का अन्त होता है।

तत्वदर्शी ऋषि गाते हैं -

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म

जब तक असत् अनित्य सुख के पीछे मन चञ्चल रहता है तब तक अज्ञान का अन्त नहीं होता।

अज्ञान में ही मोह, लोभ, काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, आसक्ति, ममता आदि दुर्विकारों में प्राप्त शक्ति का दुरूपयोग होता रहता है। इन्द्रियों के सीमित ज्ञान द्वारा मनोमन अहंकार झूठे सुख-दुःख का भोगी बना रहता है। सद्ज्ञान द्वारा ही अहंकार मुक्त होता है।

जब तक ज्ञान में कुछ भी मेरा अर्थात् अपना नहीं होता तब तक ज्ञान बन्धनों से मुक्त रहता है।

जब तक केवल अहं का ज्ञान है, अपने न होने का ज्ञान है

यही बन्धनों से मुक्त ज्ञान है। अपने होने के साथ जितना कुछ अपना प्रतीत होता है। यही अहंकार का विस्तार है, अहंकार का जितना विस्तार बढ़ता है। उतने ही अधिक संघर्ष, उतने ही अधिक युद्ध बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार संघर्ष से, युद्ध से, अशान्ति से बचने का एक ही उपाय है, वह है अपने सत्स्वरूप का बोध हो जाए। आत्म ज्ञान बिना अर्थात् अपने संग रहित स्वरूप को जाने बिना किसी प्रकार की शक्ति सम्पत्ति द्वारा अशान्ति का, भय एवं दुःख का अन्त नहीं हो सकता।

सन्त समझाते हैं कि जो कुछ बाहर-भीतर देखते हो उसके पीछे चेतन आत्मा को अनुभव करो। आत्मा ही सर्वमय है।

जिस ब्रह्म की महिमा हम शास्त्रों सन्तों द्वारा सुनते हैं, कि वह सर्वत्र सर्वरूप में सब कुछ में वर्तमान है, वही हमारे हृदय में अभी और सदा चेतन आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। इसका बोध तभी होता है जब दृश्य के बिना दृष्टि स्थिर रहती है, प्रवृति के बिना चित्त शान्त होता है और कल्पना के बिना मन स्वस्थ होता है।

स्वयं को अर्थात् अपने को, आत्मा को भूलकर जब देहेन्द्रिय परपदार्थ को अर्थात् अनात्मा, जो अपना नहीं है उसे अपना मान

कर प्रीति में रख लेते हैं तब हम परतन्त्र पराधीन होकर मोही, लोभी अभिमानी बनकर अपनी मूढ़ता को नहीं समझ पाते। इसीलिए वस्तुओं, व्यक्तियों के गुलाम (दास) होकर उनके मालिक बनने के भ्रम को नहीं जान पाते। इस प्रकार के बने हुए मालिकों से यह धरती भरी है।

जीवन में जितनी शक्ति है वह विविध वृत्तियों के रूप में गतिमान है। गतिमान वृत्तियों के द्वारा प्रत्येक मानव दुर्गति, अधोमुखी गति, प्रगति, उन्नति, सद्गति परमगति के भेद से रोगी, भोगी और योगी होता है।

अज्ञान में हमें यह ज्ञात ही नहीं होता कि इन गतियों के द्वारा अपने लिए स्वर्ग या नरक स्वयं ही निश्चित करते हैं और हम सुख-दुःख के भोगी बनते हैं।

हम सुखोपभोग के लिए स्वतंत्रता चाहते हैं। परन्तु अज्ञान में रहने के कारण स्वतन्त्रता का ज्ञान ही नहीं होता।

सन्त संग से इतना तो ज्ञात हो रहा है कि अज्ञान का अन्त हुए बिना हम परतन्त्रता से एवं बन्धनों से, दुखों से मुक्त हो ही नहीं सकते। अज्ञान ही रात्रि के समान है। प्रज्ञा में प्रकाशित ज्ञान ही दिवस की भाँति है।

हमारा अहंकार कभी-कभी अज्ञान को मानता है तब ग्रन्थों शास्त्रों से पढ़कर या विद्वानों से ज्ञान की चर्चा सुनकर अज्ञान को छिपाने का प्रयास करता है। परन्तु ज्ञानाभिमानी अहंकार ज्ञान में अपने को ही नहीं देख पाता। अतः वह ज्ञान का भोगी बना रहता है, अज्ञान से मुक्ति नहीं मिलती।

यज्ञ, तप, दान, जप, पाठ वेदाध्ययन सत्कथा श्रवण आदि शुभ कर्मो को करते हुए अनेक वर्ष बीत गए परन्तु काम, क्रोध लोभादि विकार नहीं दूर हो सके।

सद्गुरू कृपा से यह भी समझे में आया है कि हमारी दृष्टि निर्विकार नहीं है, हमारे देखने के पीछे मोह है, लोभ है, काम है, ईर्ष्या, द्वेष, विषमता, ममता है। यही समस्त दोष दुर्विचार अज्ञान की सीमा में रहते हैं।

सन्त संग में श्रद्धा के द्वारा ज्ञान प्रकाश अनावृतज होने पर प्रज्ञा दृष्टि द्वारा यथार्थ दर्शन होता है, तभी अज्ञान का अन्त होता है।

हम साधकों को अपना निरीक्षण करना चाहिए कि अपनी इन्द्रिय दृष्टि के पीछे, बुद्धि दृष्टि के पीछे जब तक मोह है, या लोभ है, ईर्ष्या, द्वेषादि, विकार हैं तब तक अज्ञान का अन्त नहीं

होता।

सन्त ने हमें सावधान किया कि जो कुछ तुम्हारे साथ है; जो तुम्हें मिला है उसे देखो और जो नहीं मिला है, जो तुम्हारे साथ नहीं है उसकी याद न करो क्योंकि प्रायः चलते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, साधना में ध्यानाभ्यास करते हुए उसी की याद आती रहती है जो सामने नहीं है।

एक सन्त कहते थे कि परमात्मा की इसीलिए याद नहीं आती क्योंकि यह तो निरंतर है ही परन्तु परमात्मा के होने का ध्यान नहीं रहता तभी हम नाम-जप करते हुए उसको स्मरण रखने का प्रयास करते हैं। इस भ्रम का अन्त अनन्त ज्ञान में ही होता है।

अज्ञान में जब तक तुम किसी से कुछ चाहते हो तब तक आसक्ति रहेगी ही। चाह उसी की होती है जो अपने से भिन्न है वह नित्य, अनन्त, सत्य नहीं है।

यह गुरू निर्णय है कि सीमित ज्ञान की कल्पना करता है। सत्य ज्ञान में ही सब कुछ प्रकाशित हो रहा है, इस ज्ञान स्वरूप आत्मा में ही प्रीति समेट लो। आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी अपना न मानो। आत्मा में ही अहंकार को समर्पित देखो।

अहंकार का मूल स्रोत आत्मा ही तो है, आत्मा की चेतना में ही अहंकार संकल्पमय है। अहंकार ही भय, चिन्ता, अशान्ति से सन्तापित होता है। आत्मा निरन्तर आनन्दमय है। लेकिन मिथ्या देहाभिमान आनन्दानुभूति में बाधक है।

हम प्रतिकूल वेदना की निवृत्ति के लिए सम्बन्धित वस्तुओं, व्यक्तियों का त्याग कर देते हैं परन्तु अहंकार जो मेरा मेरी मानकर लोभी, मोही, अभिमानी, कामी बना हुआ है। इन मान्यताओं के अलंकारों का त्याग नहीं कर पाते।

सम्यक् आत्मज्ञान होने पर चेतन आत्मा ही परम प्रेमास्पद होता है।

चेतन आत्मा ही नित्य सत्य है लेकिन उदय अस्त होने वाली चेतना नित्य नहीं रहती।

राग, द्वेष, मोह, लोभ, ममता, आसक्ति, कामना, ईर्ष्या, कलह, क्रोधाहि सारे विकार अज्ञान में ही रहते हैं और इन्ही दोषों के कारण सुखासक्त प्राणी को दुःख भोगना पड़ता है। अज्ञान में रहते हुए सुख के पीछे दुःख भोगने वाला मनुष्य, दुःख का कारण अपने बनाये दोषों को नहीं देखता, वह तो किसी न किसी व्यक्ति को या वस्तु को या किसी अवस्था को परिस्थिति

को दुखदाता मानकर संघर्ष करते हुए शक्ति का दुरूपयोग करता है।

सन्त समझाते हैं कि कोई दूसरा सुख-दुःख नहीं देता अपने मानने से ही प्रतीत होता है। यही अज्ञान है।

यह भी सन्त का निर्णय है कि परमात्मा से, भगवान से जो दूरी प्रतीत होती है वह भी मानी हुई है, वास्तव में परमात्मा या सत्चित्त आनन्दस्वरूप भगवान कभी दूर नहीं है, इसी प्रकार संसार में प्रत्येक वस्तु व्यक्ति से जो सम्बन्ध है वह भी मान लिया गया है, वह सत्य नहीं है। यह माना हुआ सुख-दुःख तथा माने हुए सम्बन्ध, मानी हुई भगवान से दूरी, भिन्नता ज्ञान में देखने से समाप्त हो जाती है।

सन्त ने बताया कि दूसरे के ज्ञान से ज्ञानी बनने से बड़ा अज्ञान नहीं है।

आत्म अज्ञान में ही सभी अज्ञानों का जीवन चलता है। आत्म ज्ञान में ही सब अज्ञानों के प्रभाव का अर्थात् अज्ञान का अन्त होता है।

सन्त संग से पता लगा कि जो स्वयं को ही नहीं जानता

उसके अन्य बहुत कुछ जानने का कोई मूल्य नहीं है।

स्वयं को जानने के लिए स्वयं में ठहरने की विधि ध्यान से ही बनती है। जो कि केवल विचार से नहीं प्रत्युत निर्विचार से पूर्ण होती है।

ज्ञान में देखने से ही ज्ञात होता है कि हम लाखों मोही, लोभी, अभिमानी, सुखासक्त जन अपने अहंकार को ऐसे ज्ञान से भरे हैं जो कि अपने को स्वतन्त्र मालिक स्वामी तो मानते हैं परन्तु हमें अपनी परतन्त्रता पराधीनता का ही ज्ञान नहीं है। उसका परिचय तब मिलता है जब हम भयातुर चिन्तित अशान्त दुखी होते हैं। आश्चर्य है कि हम अशान्त भयभीत दुखी होते हुए भी अज्ञान को नहीं पहचान पाते। ज्ञान में ही यह दीख जाता है कि सत्‌चेतन आत्मा में प्रीति स्थिर होने में ही स्वतंन्त्रता है।

परावलम्बन परापेक्षा में जड़ता है, पराधीनता है- यही अज्ञान का क्षेत्र है।

सन्त यह भी समझाते हैं कि तुम निरन्तर सुख स्वरूप ही हो, अज्ञान में किसी को सुखद-दुखद मानते हो यही-भ्रम है।

मन की मान्यता के विस्तार में न भटककर बुद्धि से द्रष्टा को

देखो; दृश्य में न अटको। आत्मा के ध्यान ज्ञान के लिए कही नहीं जाना है।

चेतनस्वरूप आत्मा का अनात्मा देह से तद्रूपता अर्थात तादात्म्य ही बन्धन है। देहाभिमान का त्याग ही मुख्य त्याग है। सावधान रहकर देखो! जिन पदार्थो में मन भागता है वह पदार्थमय तुम्हीं बन जाते हो।

जब तक मन विनाशी नामों रूपों का मनन करता है तब तक अविनाशी को नाम रूपमय मानकर उपासना ध्यान आवश्यक है।

परमेश्वर ही आत्मा के रूप में मूर्तिमान रहता है। जगत्‌ में ईश्वर को देखना ही तो विश्व रूप ईश्वर का दर्शन है।

विनाशी में अविनाशी की पूर्णता की अनुभूति ही तो परमतत्व का साक्षात्कार है।

हमें अपनी मूढ़ता मूर्खता पर इसलिये आश्चर्य हो रहा है कि हम कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग, अष्टांग योग विषयक व्याख्यान सुनते हैं पुनः जानकारी प्राप्त कर विशद व्याख्यान सुनाते हैं। श्रोताओं की श्रद्धानुसार हम ज्ञानी महात्मा बनकर

प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। लेकिन विवेकपूर्वक विचार करने पर हम अपने को सच्चे साधु, सच्चे सन्यासी महात्मा नहीं पाते हैं। सन्त संग से आत्म निरीक्षण करते हुए समझ में आया कि मन की मूढ़ता तथा बुद्धि की मूर्खता के कारण हमने योग के आरम्भ में ही जो पाँच प्रकार के यम और पाँच प्रकार के नियमों का वर्णन है उन पर पूर्णतया ध्यान ही नहीं दिया। साधक के लिए आरम्भ से (१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह - यह पाँच यम और (१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर स्मरण - इन पाँच नियमों का पालन अनिवार्य है।

सन्त संग में सत्‌चर्चा सुनते हुए भी हम प्रकृति में अहंकृति में सम्मोहित हैं। हम यह भी कहते हैं कि सब कुछ झूठ है, मिथ्या है, कोई किसी का नहीं है, सब कुछ छोड़ के जाना है, फिर भी हम उसी मिथ्या के पीछे भाग रहे हैं। जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है उसे ही सुरक्षित रखना चाहते हैं। देवी, देवता, भगवान से उसी मिथ्या को पाने की और मिले हुए को बचाने की प्रार्थना करते हैं और सन्त सद्‌गुरूजनों के प्रवचन सुनते हैं फिर भी हम आसक्ति, ममता, कामना, त्याग का , दृढ़ संकल्प नहीं करते, जबकि अभी कर सकते हैं।

अनन्त में अन्त

अनन्त से ही सब कुछ अथवा समस्त संसार, सारा दृश्य जगत्‌ उत्पन्न होता है, अनन्त से ही सब कुछ गतिमान है और अनन्त में ही सब कुछ का अन्त होता है। सन्त संग से यह ज्ञात हुआ कि हम अनन्त में ही हैं, परन्तु अज्ञानवश हमें अपने परमाश्रय का जब तक ज्ञान नहीं होता तब तक हम सदा न रहने वाले संसार में सदा नहीं रहने वाले संयोग से, सदा रहने वाला सुख चाहते हैं। सदा न रहने वाले शरीर से सदा रहने वाला जीवन चाहते हैं। सन्त से समझाया कि बुद्धि शुद्ध हो तो जान लो कि सदा एक रस न रहने वाले विनाशी के संयोग भोग से सदा रहने वाला सुख मिलता ही नहीं।

सन्त संग से पता लगा कि जो सदा रहने वाला है, वह अनादि है और अनन्त है।

यह गुरू निर्णय है कि कोई भी श्रद्धावान विवेकी साधक, यदि संयोग का वियोग होने पर फिर संयोग की चाह छोड़ दे, तो वियोग का अन्त अनन्त योग में हो जायेगा।

सुख का अन्त दुःख में होते ही यदि पुनः सुख न चाहे तब उस दुःख का अन्त अनन्त आनन्द में होगा।

शरीर का अन्त मृत्यु में होने पर पुनः वासना की पूर्ति के लिए शरीर की कामना न रहे, तब उस मृत्यु का अन्त नित्य रहने वाली मुक्ति में होगा।

किसी भी लाभ के अन्त में हानि होने पर, यदि कोई पुनः उस लाभ की कामना का त्याग करे तो उस हानि का अन्त अनन्त परमार्थ लाभ में हो जायेगा।

लाखों नर-नारी रामायण, गीता, भागवत तथा अपनी मान्यतानुसार धर्म-ग्रन्थों को पढ़ते-सुनते कहते हुए, सतकथा प्रवचन करते हुए भी जब दुखी होते हैं, अशान्त होते हैं तब यही सिद्ध होता है कि उन्हें अखण्ड अनन्त सत् चिदानन्द परमात्मा के अतिरिक्त उनकी प्रीति किसी अन्तवान से सम्बन्धित है। उनकी बुद्धि अनन्त ज्ञान को न जानकर, अन्तवान पदार्थों में अटकी हुई है।

अहंकार मन से माने हुए नाम रूपों की सीमा में जकड़ा हुआ है।

मोही, लोभी, अभिमानी, अहंकार नशे में हैं। नशे की दशा में बुद्धि विक्षिप्त रहती है। विक्षिप्त मन ही आलाप, प्रलाप, विलाप में शक्ति का, समय का दुरूपयोग करता है।

जिसकी प्राप्ति में परापेक्षा रहती है, पराधीनता रहती है, उसका त्याग करने पर स्वतन्त्रता अनन्त हो जाती है लेकिन इसे कोई सत्य-प्रेमी विवेकी ही समझ पाते हैं।

सन्त कहते हैं कि जब तक तुम कहीं भी भयातुर होते हो, चिन्तित होते हो, अथवा अशान्त होते हो तब तक तुम असत् तथा अनित्य वस्तुओं, व्यक्तियों के द्वारा प्रतीत होने वाले सुखाभ्यास के मोही, लोभी, कामी हो क्योंकि अज्ञानी हो, देहाभिमानी हो।

समझ में आ जाये तो अभी से तुम अन्तवान से प्रीति हटाकर अविनाशी अनन्त सत् चेतन आत्मा में बुद्धि को स्थिर रखकर अनन्त योगानन्द का अनुभव कर सकते हो।

सन्त कहते हैं कि तुम जहाँ हो वहीं मुक्ति का, परमात्मा की भक्ति का तथा शान्ति का द्वार है।

जब तुम संसार में अपना कुछ भी नहीं मानते हो तभी मुक्ति के द्वार में हो।

जब तुम कुछ भी नहीं चाहते तभी शान्ति के द्वार में हो।

जब तुम अपने को परमात्मा में अनुभव करते हुए परमात्मा को अपने से भिन्न नहीं मानते तभी भक्ति के द्वार में हो।

तुम कभी तीर्थ यात्रा कर लेते हो, कभी अखण्ड पाठ कर लेते हो, वह कुछ घण्टों में समाप्त हो जाता है। नित्य नियम से जप या कुछ देर ध्यानाभ्यास कर लेते हो इतने से मोह, लोभ, आसक्ति, कामना छूटती नहीं है।

प्रायः ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध में शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है।

जब तक गहरी आकांक्षा, तीव्र अभिलाषा नहीं होगी तब तक चेतना का विकास नहीं होगा, चेतना निम्न केन्द्रों में ही दबी रहेगी।

लहरे ढूँढें नीर को कपड़ा ढूँढ़े सूत।
जीव जो ढूँढ़ें ब्रह्म को तीनों ऊँट के ऊँट ।।

दृढ़तापूर्वक देह को मेरी न मानकर जब अपने चेतनस्वरूप में बुद्धि स्थिर करोगे, मन से मनन करोगे तभी असत् संग के प्रभाव से बच सकोगे।

जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, जो क्षण-क्षण बदल रहा है, परन्तु उस क्षण में आँखों से बदलता हुआ दीखता नहीं। जिससे सम्बन्ध टूट जाता है वह आत्मा नहीं है, उसे अपना मानने से ही, उसे सुखद समझकर प्रीति करने से ही

मोह, लोभ, अभिमान बढ़ता है और इसीलिये सुख के पीछे दुःख भोगना पड़ता है।

उसी को अपना मानो जो कभी न छोड़े, कभी न छूटे वही आत्मा है। अनात्मा को त्यागने से, अपना न मानने से, आत्मा ही शेष रहता है। यही सत् चिद्स्वरूप है।

देहाभ्यास मिटाने के लिए आत्मा का ही विचार दृढ़ कर लो।

आत्मा का विचार जब न हो सके तब प्राणायाम करो।

पूरा श्वास निकाल दो फिर पूरा भरो-यही अभ्यास सरल प्राणायाम है। गर्मी बढ़ रही हो तब जीभ के सहारे होठों को सिकोड़कर श्वास पूरी भरो फिर धीरे- धीरे नासिका से निकाल दो यह शीतल प्राणायाम है।

सर्दी दूर करनी हो तब लुहार की धौंकनी की भाँति गहरी श्वास लो और छोड़ो दस बार बाएँ स्वर से भरो और दाहिने से निकालो, ग्यारहवीं बार भरकर कुम्भक करो, भीतर रोक लो, फिर धीरे-धीरे निकालो फिर बाएँ स्वर से भरो, दाएँ स्वर से निकालो ग्यारहवीं बार भरकर रोक लो जब मन ऊबे तब बाएँ से धीरे- धीरे निकाल दो यह एक प्राणायाम हुआ। क्रमशः अभ्यास

बढ़ाना चाहिए।

प्राणायाम में मूलबन्ध, उडड्यानबन्ध, जालन्धरबन्ध लगाना किसी जानकार से पूछकर समझना चाहिए।

मन से जिसे तुम अपना मान रहे हो उस पर तुम्हारा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। यदि होता तो कभी छूटता ही नहीं।

जिस देह जाति, नाम, रूपादि पदार्थो के साथ मिलकर 'मैं हूँ' कह रहे हो, वह तुम नहीं हो। तुम जो हो सो जानो।

मन को देखो, तुम मन नहीं हो, तुम ज्ञानस्वरूप चेतन आत्मा हो।

तुम अभी और सदैव चेतन आत्मा हो, आत्मा तक जाना नहीं है।

बुद्धि को अहं ज्ञान में, अहं ज्ञान को चेतन आत्मा में लीन करते रहो।

तुम केवल अपने होने का 'हूँ' का ही स्मरण करो, कुछ बनो नहीं, कुछ बनना ही अहंकार है।

ज्योंहि मन बहिर्मुख हो, तत्काल उसे अन्तर्मुख करो।

प्रत्येक विचार या भाव आत्मा से ही उठता है, उसे देखो।

अहं ज्ञान अपने मूल उद्गम को भूलकर देह को ही अपना रूप मानता है-यही भ्रम है। सद् असद् विवेक से भ्रम मिटता है।

प्रायः हम दूसरों के कृत्यों को देखकर प्रश्न करते हैं कि ऐसा क्यों किया, ऐसा क्यों हुआ ? क्यों आया ? क्यों गया ? हम दूसरों के विषय में सदैव जानना चाहते हैं। परन्तु अपने भीतर जो कुछ होता रहता है उसके लिए प्रश्न नहीं करते। यह सद् गुरू सम्मति है कि तुम जो कुछ भी करो उससे पहले ही अपने से पूछो कि ऐसा क्यों किया जा रहा है ?तुम जो कुछ भी करो उसके द्वारा दूसरों को सुख मिल रहा है या अपने ही सुख के लिए किया जा रहा है या दूसरों के हितार्थ किया जा रहा है ?

अन्त में स्वयं को स्वयं के भीतर जान लेना है। तुमने जो कुछ पाया है वह बाहर ही पाया है और त्याग के द्वारा पाया है। अब यदि तुम त्याग के बाद कुछ पाने की चाह त्याग दो तब जो कुछ मिलेगा वह अनन्त ही होगा।

सन्त समझाते हैं कि ज्ञान में देखोगे तब ऐसा कोई क्षण नहीं जब चेतन सत्ता न हो। तुम जो हो उसी में हो वही हो। चेतन आत्मा तक तुम्हें जाना नहीं है, कहीं जाकर चेतन आत्मा को पाना नहीं है।

देह भाव असत् संग है। आत्मा सत् है। आत्मा में ही पूर्ण शान्ति है। अनात्मा में सुख-दुःख का द्वन्द्वहै।

स्वयं में स्थित आत्मा को जान लेने पर ही द्वन्द्वसे मुक्ति मिलती है।

समुद्र को अपनी लहर का भान नहीं है, इसी प्रकार आत्मा को देहाभिमान का भान नहीं है। अहंकार ही देहाभिमानी है।

समस्त कार्य उच्चशक्ति द्वारा ही होते हैं। मनुष्य यन्त्र मात्र है। व्यर्थ ही अहंकार अपने को कर्ता मानता है, यही अज्ञान है।

आत्मा भाव से रहो, देह से आसक्ति मिटा दो, संसार का कोई पदार्थ नहीं कहता है कि वह है - यह तो तुम्हारी ही धारणा है।

सन्त कहते हैं-तुम्हें अपनी धारणा से, मान्यता से, स्वीकृति से मुक्त होना है।

व्यक्तिगत चेतन को (आभास को) परम चेतन में विलीन करना है।

सन्त सद्गुरू समझाते हैं :

यदि तुम भक्ति मुक्ति शान्ति चाहते हो तब संसार की किसी वस्तु को अपनी न मानो। किसी भी देह में विश्वास न करो।

परिवार को अपना मानकर ममता न करो, भगवान की आत्मा जानकर सेवा करो। सब कुछ परमात्मा के विधान से मिलता और छूटता हुआ देखो।

अपना मानकर प्रीति करने से दोष बढ़ते हैं, दोषों को ही दुःख का कारण जानो।

किसी से आशा न करो। जो कुछ मिला है उसी में सन्तुष्ट रहो।

लालचवश कुछ पाने और भयवश कुछ बचाने के लिए प्रार्थना आराधना लोभी करते हैं।

सुखासक्तिवश किसी से स्नेह न करो। प्रतीत होने वाली सुन्दरता को सत्य न मानो। तुम साधक साधु को तब तो धन तथा स्त्रियों की प्राप्ति महाविघ्न समझो। सुखोपभोग से पुण्यों को नष्ट होता हुआ समझो।

प्रारब्ध से जो आये या जाये उसे देखो और स्वीकार करो। रागी, द्वेषी, दुःखी न बनो।

यह भी सद्गुरू की सम्मति है - तुम्हें संसार में धन, सामान, सुखोपभोग, सम्मान की चाह है तो दौड़ते रहो; परमात्मा को पाना है तो ठहरो।

मन जब दौड़ता है तब संसार ही सन्मुख है और जब चाह रहित होकर ठहरता है तब परमात्मा ही है।

अहंकार ही अनन्त से विमुख होकर अन्तवान पदार्थो का मोही, लोभी बन रहा है परन्तु इसे कोई विद्वान ही समझ पाते हैं।

मोह ममत्व उसी के प्रति होता है जो विनाशी है। मोह ममत्व से छूटने के लिए नित्य प्राप्त अविनाशी की स्मृति आवश्यक है।

सन्त कहते हैं - तुम एकान्त में जितना अधिक शान्त, मौन, विचार रहित, विकार रहित होकर ठहरोगे उतना ही आवश्यक सामर्थ्य का विकास होगा उसी सामर्थ्य से जो होना चाहिए वह अनायास ही होगा।

स्वयं का ज्ञान न होना अज्ञान है।

मन की कार्य प्रणाली को तथा कर्म के परिणाम को न देखना अज्ञान है।

ज्ञानी वही है जो कार्य करने के प्रथम ही परिणाम को देखता है और पाप-पुण्य दोनों प्रकार के कर्मों को बन्धन का कारण जानकर अपने ज्ञान स्वरूप में तृप्त रहता है।

ज्ञान विज्ञान में तृप्त वही है जो किसी से कुछ भी नहीं चाहता, अपने ध्यान में सन्तुष्ट है। यदि तुम संसार से निराश होकर सत्य परमात्मा के प्रति प्रीति को मोड़ना चाहते हो और अनेक प्रकार के ज्ञान से मुक्त होकर परमात्मा को चाहते हो तो एकान्त में सत्य बोध की प्रतीक्षा करते रहो परन्तु ऊबो नहीं। प्रतीक्षा करते हुए मन ऊबता है तब कुछ पढ़ना चाहता है, कीर्तन भजन गाता है और कथा प्रवचन में समय व्यतीत करता है।

अधिक संख्या में साधक धार्मिक उत्सव, मनमोहक गीत, कैसेट रेकार्ड सुनते हैं। कुछ समय पूजा, आरती, प्रार्थना आदि पद्धति को पूर्ण करते हुए वर्षों-वर्षों से सन्तोष मान रहे हैं।

अज्ञान का अन्त तभी होता है जब बुद्धि शुद्ध होती है। बुद्धि शुद्ध तभी होती है जब चेतन स्वरूप आत्मा में ही स्थिर रहने लगती है।

बुद्धि स्थिर तभी हो पाती है जब मन में किसी शब्द, स्पर्श, रूप, रसादि विषय की चाह नहीं रहती।

सुखासक्त रागी के लिए परमात्मा का यह संसार अगणित पदार्थो से भरपूर है। सौन्दर्य तथा माधुर्य से परिपूर्ण है। अज्ञान का अन्त होने पर परमात्मा ही विश्व रूप में सौन्दर्य, माधुर्य तथा ऐश्वर्यमय दीखता है, पदार्थो का प्रभाव नहीं पड़ता।

मनयुक्त मानव सुख का रागी, दुःख का द्वेषी बना रहता है।

बुद्धियुक्त मानव राग द्वेष को छोड़कर अनासक्त रहकर समत्व योगी होता है।

सन्त का निर्णय है कि तुम इस समय कामी, क्रोधी, लोभी, मोही जैसे हो वैसे ही प्रभु की शरण में समर्पित रहो। परमात्मा जो करवाये, जहाँ ले जाये, बुलवाये या मौन करा दे- सब स्वीकार करते रहो। जो कुछ हो उसी में राजी रहो। अज्ञान का अन्त करने के लिए सबसे पहले तो यह आवश्यक है कि हम जान लें कि हमारा मन, हमारी बुद्धि अज्ञान में रहते हुए कितनी मान्यताओं की तथा स्वीकृतियों एवं धारणाओं की दासता में आबद्ध है।

अज्ञान का दुःख जब भरपूर होता है तभी त्याग की क्षमता आ जाती है। थोड़े दुःख से ज्ञान की प्यास नहीं बढ़ती, सुख की ही प्यास प्रबल रहती है। सहस्त्रों नर-नारी, ज्ञान के अभिमानी

जनों की भीड़ से निकलकर अपने अज्ञान को मिटाने के लिए, ज्ञान को प्राप्त करने के लिए, श्रद्धा से प्रेरित होकर साधु, सन्त महात्माओं के पास जाते हैं, ज्ञानोपदेश सुनते हैं। रामायण, गीता, उपनिषद, तथा वेदान्त जैसे ग्रन्थों का अध्ययन भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार करते है फिर भी अज्ञान की सीमा को पार नहीं कर पाते क्योंकि उनके मन में अज्ञान का दुःख पूर्ण नहीं है। दुःख से अधिक सुखोपभोग का प्रभाव है। इसीलिए ऐसे श्रद्धालु भी ज्ञान द्वारा अज्ञान का अन्त नहीं कर पाते। हम साधकों से सन्त प्रश्न करते हैं कि तुम अनेक प्रकार की कमियों से दुःखी हुए होगे। उसी प्रकार ज्ञान विवेक की कमी का दुःख होने पर ज्ञान विवेक के अधिकारी हो सकोगे।

विचार करके देखो तुम्हें सत्चर्चा सुनाने का बहुत अच्छा अभ्यास हो सकता है। लेकिन तुम्हें असत्संगी होने का यदि दुःख नहीं है, असत्संग का त्याग नहीं हो सकता।

असत् का त्याग हुए बिना, नित्य प्राप्त सत् चेतन तत्व की अनुभूति नहीं होती। असत् कोई वस्तु नहीं जिसे छोड़कर हाथ खाली हो जाते हैं।

अपने को जानकर अपने से भिन्न कुछ भी न चाहना ही

असत् का त्याग है।

सत्य के बोध के लिए मन को अनेक प्रकार के ज्ञान से मुक्त करना होता है।

भोगी सुखासक्त मन में आविष्कार, कल्पना तथा धारणा की विशाल शक्ति है-इससे मुक्त होने पर मन के पार जाने पर ही अज्ञान से मुक्ति हो जाती है।

भगवान के मतानुसार मुक्ति, भक्ति तथा शांति के लिए अज्ञान का अन्त होना चाहिये।

अज्ञान का अन्त तभी समझा जाता है जब सभी भूत प्राणियें के अगणित नाम रूपों का प्रकाशत एक अखण्ड परम आत्मानुभव होता है, परमात्मानुभव तभी समझना जब कुछ भी पाने की आकांक्षा नहीं रहे, कुछ छूटने पर शोक नहीं हो और निरन्तर समता से साधक शांत, प्रसन्न रहता रहे ऐसा तभी हो सकता है जब ज्ञान में अपना कुछ दीखता ही नहीं हो। किसी प्रकार के बल का अभिमान नहीं रहे, कोई कामना नहीं रहे। किसी कारण से क्रोध आता ही नहीं हो। लोभ रहता नहीं, इसीलिए संग्रह भी नहीं करता। किसी वस्तु व्यक्ति में ममता नहीं रहती।

अज्ञान का अन्त होने पर राग-द्वेष नहीं रहता। विषयों से वैराग्य हो जाता है। ज्ञान योगी साधक निरन्तर ध्यान योग में इन्द्रियों सहित मन को वश में रखता है।

कोई भी क्षणमात्र को आत्मानुभव से वंद्विचत नहीं है। ब्रह्म कहीं अन्यत्र नहीं है। अहं के पीछे ब्रह्म, चेतन आत्मा ही तो है, इसे स्मरण करते रहो क्योंकि विस्मृति हो रही है।

ब्रह्माकार वृत्ति मन को अन्य संकल्पों से मुक्त करने में सहायक है।

किसी भी सांसारिक सुखोपभोग का संकल्प उदय होते ही रोक दो तभी तुम सत्यानुरागी हो सकोगे।

आत्मानुभव होने के लिए चित्त को विरक्त, शांत तथा असत् अनित्य चिंतन से रहित रखना होता है। सब साधक यही नहीं कर पाते।

तुम ज्यों ही कुछ अपना मानकर कुछ बनते हो तभी पराधीन हो जाते हो।

देखते रहो कि मन किसी वस्तु व्यक्ति के साथ है या सत् चेतनस्वरूप के साथ है।

स्वयं में शांत रहने से, अहं को 'मै' व 'मेरी' की स्मृति से मुक्त रखने पर ज्ञान चक्षु खुलते हैं।

महर्षि वशिष्ठ ने बताया कि जब चद्रचल चित बाह्य पदार्थो से पूर्णतया विरक्त होकर शान्त रहता है तभी आत्मानुभव होता है। (यो.वा. ५-६४-५४)

सन्त समझातें है कि ज्ञान से देखते हुए क्षण-क्षण के पीछे विद्यमान आत्मा-परमात्मा की अनुभूति तभी होगी जब तुम सब प्रकार से मौन शान्त हो सकोगे और ज्ञान में जो कुछ व्यर्थ भर लिया है उसे हटा सकोगे, तब परमात्मा ही शेष रहेगा।

परमात्मा को कहीं से आना नहीं है वह तो निरन्तर है ही, तुम्हारी मान्यताओं, स्वीकृतियों, धारणाओं से ही बोध की दृष्टि ढकी हुई है।

जो ज्ञान तुमने सीखा है उसे छोड़कर ठहरो और जानो की परमात्मा तो नित्य सुलभ है। तुम यह न समझो कि हम ज्ञानी हैं।

यह गुरू निर्णय है कि पर का सहारा न लेकर स्वयं में रमण करना ही आत्मसुख में तृप्त रहना है।

जो आत्मा में ही प्रीति स्थिर रखते हुए तृप्त है, जो आत्मा में ही संतुष्ट है उसे फिर कुछ भी करना शेष नहीं रहता-यह

भगवान ने कहा है।

अहं ज्ञान जितना आकारों से भरा है और जब तक भरा रहेगा तब तक सत्य परमात्मा से विमुखता ही रहेगी।

मैं क्या हूँ ?यह पता नहीं है, फिर भी मैं कुछ हूँ-मैं यह हूँ-यही अहंकार सत्य स्वरूप के बोध में बाधक बनता है

यह अज्ञान ही समस्त बंधनों का, सभी दुखों का कारण है। यह सबसे प्रथम साथ लगने वाला पाप है। मोह, लोभ, काम, क्रोधादि जितने भी पाप कहे सुने जाते हैं, वह सब इस अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं, अज्ञान में ही रहते हैं। सभी दोषों का, दुखों का और अज्ञान का अन्त ज्ञान से होता है।

तत्वदर्शी ज्ञानवान ने यह भी बताया है कि धरती में ऐसे अज्ञानीजनों को बहुत बड़ी भीड़ है जो अपने को ज्ञानी मानते हैं। चूँकि उनकी संख्या बहुत अधिक है इसलिए उन्हें अपने को ज्ञानी मानने की बहुत सुविधा है। ऐसे ज्ञानाभिमानियों की भीड़ अपने माने हुए ज्ञान की सुरक्षा के लिए सदा से संघर्षरत है।

सन्त समझाते हैं कि इस सृष्टि में जीवन का विकास जड़ता से चेतना की ओर है, देहासक्ति से आत्मानुरक्ति की ओर है। दुःख-सुख के बन्धन से छूटकर आनन्द की ओर है।

इस विकास की पूर्णता तो स्वतन्त्रता की उपलब्धि से होती है।

मनुष्य में मानवता से विकास का आरम्भ होता है, परमात्मा में विकास का अन्त होता है। लेकिन स्वतंन्त्रता प्राप्त न होने तक मनुष्य अनन्त में पहुँच नहीं पाता।

तुम स्वतन्त्र होकर जीवन का सृजन एवं सुन्दर निर्माण कर सकते हो। लेकिन अज्ञान का अन्त हुए बिना जीवन का ज्ञान ही नहीं होता। जब तक जीवन का ज्ञान नहीं होता तभी तक मृत्यु का भय रहता है अज्ञान के कारण ही भय से, दुःख से, अशांति से मुक्ति नहीं मिलती है।

आत्मा परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, प्रेमस्वरूप है उसी में अहं स्फुरित हो रहा है- भागवत में अद्वय ज्ञान को ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान कहा गया है। इस अखण्ड ज्ञान को जो ब्रह्ममय, परमात्मा, भगवानमय देखते हैं उन्हें प्रज्ञावान ज्ञानी कहा गया है।

जो ज्ञान में न देखते हुए भी अपने को ज्ञानी मानते हैं, उन्हें ज्ञानाभिमानी अहंकारी कहा गया है।

अहंकार, अज्ञान में प्राप्त शक्ति द्वारा संसार में शब्द स्पर्श

रूप, रस, गन्ध को इन्द्रियों से ग्रहण करता है, मन द्वारा सुख-दुःख का भोक्ता बना रहता है और बुद्धिबल, विद्याबल से अज्ञान में माने हुए सुख की सुरक्षा में तथा माने हुए सम्बन्धों की सुरक्षा में और सत् परमात्मा अथवा भगवान से मानी हुई दूरी को समाप्त करने के लिए प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता का दुरुपयोग या उपयोग करते हुए तब तक दुखभोग से मुक्त नहीं हो पाता जब तक ज्ञान से अज्ञान का अन्त नहीं कर लेता।

विचार द्वारा संसार में अपना कुछ न मानने से वस्तुओं तथा सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रति राग नहीं छूटता। ब्रह्म सत्यं, जगत मिथ्या-यह गुरू मन्त्र कहते हुए भी मन जब तक कहीं रागासक्त, सुखासक्त है तब तक असत् का अन्त नहीं होता।

असत् को असत् जान लेने से उसकी निवृत्ति नहीं होती। मोह, लोभरहित शुद्ध बुद्धि जब स्वरूप में स्थिर हो जाती है तब किसी की अपेक्षा बिना ही अज्ञान का अन्त हो जाता है।

वास्तव में ज्ञान तो नित्य सत्य ही है, ज्ञान होना नहीं है। जो ज्ञान में न देखकर अज्ञान में अपना मान कर प्रीति के साथ मोही, लोभी, कामी, क्रोधी बना रहता है उसका अज्ञान मिटाना है।

ज्ञान में वह अहंकार नहीं रहता जो अज्ञान में ज्ञानाभिमानी बना रहता है।

विनाशी नामों, रूपों में अविनाशी चेतन सत्ता का अनुभव करना ही अज्ञान का अन्त है।

गीता में स्पष्ट किया है कि शरीर को छोड़कर जाते हुए को, अथवा में शरीर में स्थित हुए को, अथवा विषयों को भोगते हुए को इस प्रकार तीन गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं देखते।

'विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः' केवल वही देखते हैं जिनके नेत्र ज्ञान में खुले हैं। (गी १५/१०)

जो विनाशी वस्तुओं व्यक्तियों के संयोग के भोगी हैं वह यज्ञ, दान, तप, जप शास्त्राध्ययन करते हुए भी जब तक अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता तब तक अज्ञानीजन सत्य चेतन आत्मा को नहीं जानते। जो विनाशी नाम रूपों में ज्ञान से अविनाशी चेतन आत्मा को जानते हैं वही तत्वज्ञानी परमात्मा के योगी कहे जाते हैं।

भगवान कहते हैं कि 'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो', में ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप में स्थित हूँ। यह

सुनते-पढ़ते हुए भी हम भगवान को बाहर ही खोजते-फिरते हैं भगवान की बात नहीं मानते।

सन्त तुलसीदास की दृष्टि भगवान राममयी थी इसीलिए वे कह सके-

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
सबके पद बन्दन करउँ सदा जोरि जुग पानि।।

भक्त मीरा की दृष्टि भगवान कृष्णमयी थी इसलिए वह गा सकी थीं -

' जित देखूँ तित श्याम मयी है।'

भक्त **सूरदास जी** की दृष्टि बालकृष्णमयी थी। उनके उद्‌गार हैं-

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानि कै मोहिं।

सन्त **कबीर** की दृष्टि ब्रह्ममयी थी उन्होंने कहा -

दर दीवार दरपन भया जित देखूँ तित तोहिं।
कंकड़ पत्थर ठीकरी भई आरसी मोहिं।।

स्वामी रामतीर्थ के उद्‌गार हैं -

जमाना आईना राम का है हर एक सूरत से है वो पैदा। जो चश्में हकबीं खुली तो देखा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।।

तत्वदर्शक ज्ञान दृष्टि खुलने पर बाहर-भीतर राम ही दीखता है।

दृष्टि ब्रह्ममयी कृत्वा पश्येद् बह्ममयंजगत् ।।

दृष्टि को ब्रह्ममयी करके जगत को ब्रह्ममय देखो।

इस उपरोक्त मन्त्र पर ध्यान देने से यह ज्ञात हो रहा है कि प्रायः अज्ञान में मोहमयी, लोभमयी काममयी, ईर्ष्या, द्वेषमयी, अभिमानमयी दृष्टि रहती है, ज्ञानमयी ब्रह्ममयी नहीं रहती । दृष्टि के पीछे जब तक तत्व ज्ञान नहीं है तब तक अज्ञानी अहंकार के लिए जगत धन मान भोग का ही साधन बना रहता है।

श्रद्धा जाग्रत होने पर बुद्धि दृष्टि के पीछे ब्रह्मज्ञान होना चाहिए अथवा आत्मा-परमात्मा का ज्ञान होना चाहिए तभी अज्ञान में पोषित काम, क्रोध, लोभ मोहादि दोषों से मुक्ति मिलती है।

अपने शुद्ध अस्तित्व की विस्मृति ही अज्ञान है। आत्मा का अनात्मा से मिलना अज्ञान है। जो अपने से भिन्न है, पर पदार्थ है; जिसमें अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है वही अनात्मा है।

अध्ययन तथा सतचर्चा श्रवण करते हुए इतना समझ में आ जाना चाहिए कि सत् परमात्मा अध्ययन से नहीं मिलेगा क्योंकि वह वाणी एवं बुद्धि से परे है।

जो परम ब्रह्म है वही आत्मा है। ज्ञान में यह कुछ न रहे तभी आत्मा का बोध होता है।

शान्त रहो और जानो कि मैं चेतन आत्मा हूँ। संकल्प न होना ही शान्त होना है।

'मैं' के बोध में दृढ रहो तभी नित्य सत्ता अपने को प्रकट कर देगी।

पूर्ण परमात्मा में होकर स्वयं को अपूर्ण अनात्मा से मिलाना भ्रम है।

प्रेम, ज्ञान, शान्ति, आनन्द आत्मा का ही स्वरूप है, अहंकार विमुख होकर बाहर खोज कर रहा है। यही अज्ञान है।

समस्त दृश्यों के मूल में विद्यमान सत् चेतन को कभी न

भूलो। जब ऐसा न कर सको तब परमात्मा में अपने को समर्पित करो।

मन को शान्त और संकल्पों से मुक्त करते ही आत्मा शेष रहता है।

शुद्ध बुद्धि वही है जो सुखासक्ति विषयासक्ति, पदार्थसक्ति का सदा विरोध करती है, जो विनाशी से अनित्य से मन को विरक्त रहने को और नित्य सुलभ सत् चेतन आत्मा में, अनुरक्त रहने को प्रेरित करती है।

आनन्दमय परमात्मा, आत्मा कभी भिन्न नहीं है। आत्मा की सत्ता से गतिमान मन सुख-दुःखमय सृष्टि रच लेता है।

सुखासक्त मन ही बन्धन का कारण है। सुखासक्ति संगासक्ति से विरक्त मन मुक्ति का द्वार बन जाता है।

मन ही इन्द्रियों के विषयों को अनुकूल मानकर सुखी होता है, प्रतिकूल मानकर दुःखी होता है।

मान लेना और उसी का मनन करना मन का स्वभाव है। मन ही संकल्पों का समूह है। चेतन आत्मा ही मन का आश्रय है। मन भ्रान्ति है।

अस्तित्व में बुद्धि के स्थिर होने पर ही मन से मुक्ति मिलती है।

मानव में मन महान शक्ति है इसके द्वारा जो साधक सत्य परमात्मा को नहीं जान लेता तब यही शक्ति विनाशकारी हो जाती है।

सत्य की प्यास जब प्रबल होती है तब शक्ति सत्य की खोज स्वयं कर लेती है। सत्य आत्मा परमात्मा से विमुख रहने तक संसार में सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी कोई भय, चिन्ता, अशान्ति से, दुःख से, नहीं मुक्त हो सकेगा।

सत्यानन्द की अनुभूति में बीते हुए अतीत की स्मृति और भविष्य का चिन्तन तथा दुःख-सुख, मानापमान एवं लाभ-हानि आदि द्वन्द्वबहुत बाधक बनता है।

कामना पूर्ति में शक्ति का क्षय होता है, कामना त्याग से शक्ति का सञ्चय होता है।

मोही, लोभी, अभिमानी, मनुष्य, धन, मान, सामान आदि के सञ्चय सुरक्षा में जीवन बिता देता है, कोई विवेकी पुण्यवान साधक ही प्राप्त शक्ति के सञ्चय सुरक्षा में तत्पर रहता है।

यह भी सन्त मत है कि प्रत्येक सम्बन्ध के साथ अपने भीतर देखो कि क्या प्रभाव पड़ता है, सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, व्यक्ति के संग से तुम्हारे भीतर जो गुण-दोष, मन के अन्तराल में छिपे होंगे वही प्रकट होंगे, उन्हें देखना ही आत्मज्ञान है अर्थात अपना निरीक्षण है। ईर्ष्या, द्वेष, लोभ महत्वाकांक्षा, कामना, वासना, चिन्ता, भय आदि वृत्तियाँ अनेक जन्मों से चली आ रही हैं इन्हें अब पुष्ट नहीं करो, इन्हें क्रिया में परिणत न होने दो तभी इन दोषों में नष्ट होने वाली शक्ति सद्‌गुणों के विकास में सहायक बनेगी।

बुराई समाप्त होने पर ही अच्छाई प्रकट होती है।

यदि तुम दूसरों से अपने मन की पूर्ति न चाहो, धन, मान, भोग, सुख न चाहो तब तो दोषों पर विजय प्राप्त कर पराधीनता से मुक्त हो सकते हो।

ईष्या, द्वेषादि विकार तभी जाग्रत होते हैं जब तुम स्वयं से असन्तुष्ट होते हो।

तुम स्पर्द्धा न करो, अपनी किसी से तुलना न करो, प्रतिष्ठा, मान बड़ाई न चाहो तभी स्वतन्त्र हो सकते हो।

सन्त कहते हैं- बिना प्रयास जागरूक बने रहो-यही आनन्दावस्था है। आत्म भाव से रहने का तात्पर्य हृदय में प्रवेश होना है। शुद्ध बुद्धि से ही यह सत्य समझ में आ सकता है।

तमसः परस्तात् - अज्ञान से अत्यन्त परे अज्ञान के प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा के उपासक हो जाओ।

आत्मा की ही महिमा सुनते रहो, पढ़ते रहो-इससे देहादि अनात्म पदार्थों से तादात्मयता की भ्रान्ति दूर होती है। इसीलिए बार-बार आत्मा की ही चर्चा कहते सुनते पढ़ते रहना आवश्यक है।

आत्मा के मनन से स्पष्ट होता है कि यह चेतन ज्ञान ही आत्मा है।

निदिध्यासन से, अहं आत्माभ्यास की दृढ़ता से, स्पष्ट होता है कि आत्मा अनन्त एवं आनन्द है।

सिनेमा के परदे में अग्नि जल दीखते हैं पर जलाते नहीं भिगोते नहीं हैं, इसी तरह ब्रह्म में सब कुछ भासता है परन्तु चेतन पर प्रभाव नहीं पड़ता।

सत् चिदानन्द से जीव का अखण्ड सम्बन्ध है। जो असत् है

जड़ है, और जिसके सम्बन्ध विच्छेद होने पर दुःख भोग है उससे माना हुआ झूठा सम्बन्ध है। कर्म की बेड़ी से जीव बँधा है, यह बन्धन कर्म की छेनी हथौड़ी से ही कट सकता है। इसके लिए निष्काम होने का विवेक प्राप्त करना होता है।

सन्त सावधान करते हैं कि कर्म नही बाँधता, प्रत्युत ममता, कामना, आसक्ति बाँधती है। इससे मुक्त होने पर एक ही उपाय है कि जो कुछ भी जन्म के साथ मिला है उसे अपना न मानो, मिले हुए को अपना मानना दाता के साथ बेईमानी है।

असत् अनित्य से सम्बन्ध रहने तक मन वश में नहीं हो सकता।

कुछ श्रद्धा कुछ दुष्टता कुछ संशय कुछ ज्ञान।
घर का रहा न घाट का ज्यों धोबी का श्वान।।

सन्त मतानुसार भोगैश्वर्य को अपना न मानकर भगवान का मानो और विराट रूप भगवान की सेवा के लिए सदुपयोग करो। अविवेकी, अश्रद्धालु, कृतघ्नी, संशयकर्ता, सदुपयोग नहीं कर पाता।

भगवान के मतानुसार यदि हम अपने आपको पराधीनता से

मुक्त नहीं करते तब हम अनात्मा के मोही अपने साथ शत्रुता का बर्ताव करते हैं।

अनात्मोपासक का पतन, जितात्मा का उद्धार होता है।

जो अपना कुछ भी नहीं मानता वहीं जितात्मा होता है। जो समता में शान्त है उसी ने पराधीनता से मुक्ति पा ली है।

भगवान ने कहा है अपने आप में अपने आप को देखते हुए अपने आप में संतुष्ट रहो।

मन, बुद्धि, इन्द्रियों द्वारा ही काम ज्ञान को ढक लेता है, जीव उसी में मोहित हो जाता है। कोई भी वस्तु, व्यक्ति, सदा नहीं रहती पर सम्बन्ध बना रहता है।

कर्म और कर्म का फल दोनों नाशवान है। कर्मफल की इच्छा करने से फल न अधिक मिलता है न कम मिलता है तब इच्छा करना व्यर्थ है।

यह भी सन्तमत है-जब तक राग का पूर्णतया अभाव नहीं होता तब कर्म का त्याग कोई नहीं कर सकता।

परमात्मा किसी कर्म का फल नहीं है। हम परमात्मा के ही हैं

परमात्मा में ही हैं फिर भी परमात्मा को इस कारण नहीं समझ पाते क्योंकि जो अपना नहीं उसे अपना मानते हैं। पदार्थों से सम्बन्ध रहते परमात्मा की अनुभूति नहीं होती है।

सन्त समझाते हैं कि तुम सदैव अपने चेतन आत्मा में हो। देश काल तुम्हारे भीतर हैं।

शान्त रहकर जान लो कि मैं परमात्मा में हूँ। संकल्प रहित होना-शान्त होना है।

केवल 'मैं हूँ' इसी बोध में बुद्धि को स्थिर करो तभी नित्य सत्ता अपने को प्रकट कर देगी।

परमात्मा आत्मा चेतन सत्ता अभी है, यहीं है, नित्य निरन्तर है। तुम आत्मवान होकर शान्त स्वस्थ रह सको तब तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।

निष्काम प्रेम तथा आनन्द, शान्ति आत्मा का ही स्वरूप है।

तुम्हें आनन्द या शान्ति प्राप्त नहीं करना है क्योंकि तुम आनन्द स्वरूप ही हो, केवल दुःख मिटाना है, दुःख मिटाने के लिए अज्ञान मिटाना है, अज्ञान मिटाने के लिए सदैव ज्ञानस्वरूप चेतन स्वरूप आत्मभाव में बुद्धि को स्थिर रखना है। यह

आश्चर्य है कि आत्मा में ही रहकर बुद्धि यह प्रश्न करती है कि आत्मा कहाँ है।

तुम अनुभव करो कि साक्षात्कार नित्य है, निरन्तर है। अभी है। यहीं है।

मन को सेवा भजन में लगाना है तब इच्छाओं का त्याग करो।

संसार में सब कुछ मिथ्या जानो, सिनेमा के चित्रों की भाँति देखो और अनासक्त रहो।

अपने को कुछ मानो नही; शान्त मौन होकर भीतर अपने को जान लो। यह निश्चय कर लो कि मैं तन मन नहीं हूँ। कोई संकल्प न करो।

उस प्रज्ञा को जाग्रत करो जिससे ब्रह्म ही जगत मय दीखता है। यह जगत ब्रह्म ही जगत मय दीखता है। यह जगत ब्रह्मोत्सव है।

जब परमेश्वर आत्मा सबके हृदय में निवास करता है तब इसे बाहर खोजना मूर्खता ही है।

यह जो मन है सो चेतन आत्मा का ही अंश है।

विचार वैराग्य अभ्यास द्वारा चित्त के शान्त शून्य होने पर आत्मानुभव होता है।

अनन्त आत्म तत्व को ही चिन्तन मनन का आधार बना लो।

कितना ही विद्वान क्यों न हो जब तक मन तथा इन्द्रियाँ वश में न हों तब तक आत्मज्ञान नहीं होता, शान्ति भी नहीं मिलती ।

यह भी सद्गुरू सम्मति है यदि तुम शक्ति के अधोमुखी प्रवाह को उर्ध्वमुखी बनाकर सद्गति, परमगति चाहते हो तो भीतर से बार-बार प्रश्न उठने दो मैं कौन हूँ?शक्ति के साथ प्रश्न करो मैं कौन हूँ ?लेटे हुए, बैठे हुए, चलते हुए, खुले नेत्रों से या बन्द नेत्रों से प्रश्न करो मैं कौन हूँ। भीतर से ही उत्तर की प्रतीक्षा करो। ऐसा करने से शक्ति केन्द्रित होगी, ऊपर उठेगी इससे काम वासना का रूपान्तर होता है। दिन-रात भगवान का नाम जपकर यदि परमात्मा का बोध हो रहा है तब तो आनन्द ही है। यदि अभी नहीं हो रहा है तो ''मैं कौन हूँ'' का शक्तिपूर्वक स्मरण करके देखो।

ध्यान रखकर ''मैं कौन हूँ'' इस प्रश्न से, इस जिज्ञासा से वीर्य उर्ध्वगामी होता है परन्तु इस पर श्रद्धा, विश्वास की दृढ़ता होना आवश्यक है।

लाखों लोग व्यक्ति में श्रद्धा करते हैं, वस्तु में विश्वास करते हैं, परन्तु सत्य परमात्मा के अपने साथ होने में नहीं कर पाते।

मैं कौन हूँ; यह प्रश्न अज्ञान अन्धकार में प्रकाश की भाँति दिशा दिखाता है। चेतना की गहराई में कोई बीज जड़त्व को तोड़कर बीज से जीव होकर सत्य प्रकाश दर्शन के लिए मार्ग बना रहा है। इसी प्रकार मैं कौन हूँ बीज की भाँति जड़ता तो चीरता हुआ ज्ञान प्रकाश में आता है और जानता है कि मैं कौन हूँ।

शून्य और शान्त होना ही उत्तर पाने की साधना है। पूर्णता का बोध ही उत्तर है। अतः स्वयं से ही प्रश्न करो कि ''मैं कौन हूँ''।

जड़त्व की सीमा पार करने के लिए विचार सहायक हैं लेकिन विचारों से अज्ञान नहीं मिटता, छिप जाता है।

अन्धी श्रद्धा ने तथा कल्पनाओं, धारणाओं ने अहंकार को ज्ञान में देखने से वद्गिचत कर दिया है।

जब मन में मनन नहीं होता; चित्त भी चिन्तन रहित होता है, तब जो निरन्तर है उसका बोध होता है। अपने में ही अपने द्वारा अपना बोध होता है। तुम सदा आत्मा होकर रहो- यही प्रसाद है।

मन के माध्यम से ही परब्रह्म जाग्रत स्वप्न आदि अवस्थाओं अथवा अनेक रूपों में प्रकाशित होता है। ब्रह्मात्मा ही सर्वमय है। अन्य कुछ नहीं है। आत्मज्ञान के प्रकाश बिना मन में उसी प्रकार चित्र बनते रहते हैं जिस प्रकार अन्धकार से भरे कैमरे के के प्लेट में चित्र आते हैं। प्रकाश में नहीं बनते।

प्रतिबिम्बित प्रकाश ही विद्योपाधि में ईश्वर है अविद्योपाधि में जीव है। अहंकार है।

अधिक संकल्प उठने पर अधिक जोर से प्रश्न करो मैं कौन हूँ?उत्तर की प्रतीक्षा में ध्यान केन्द्रित करो।

भगवान कहते हैं कि संकल्प से उत्पन्न होने वाली कामनाओं, वासनाओं को आसक्ति को त्याग कर मन द्वारा इन्द्रियों को वश में करो।

संकल्पों के नाश से आत्मा स्वतः प्रकाशित होती है।

अहं का स्रोत शुद्ध चेतन आत्मा ही तो है। इस चेतनस्वरूप में ही बुद्धि स्थिर करो। यह भी सन्त मत है कि भ्रम से तुम किसी वस्तु को अथवा किसी रूप को सुन्दर मानते हो, सत्य मानते हो, इसी के पीछे काम वासना चलती रहती है। वास्तव में चेतन आत्मा ही सुन्दर है, सत्य है, प्रिय है इसे ही ध्यान से देखो।

सन्त समझाते हैं कि संसार तुम्हारे मन में है, संसार कभी नहीं कहता कि मैं हूँ।

अहं केवल एक है। अहंकार भिन्न-भिन्न हैं, वे केवल एक आत्मा में हैं, चेतन में हैं, 'मैं' केवल एक है 'मैं ही' ज्ञान स्वरूप सत्य है।

क्षणभर के लिए भी मेरे मन का चैतन्य प्रभु त्याग नहीं करता। मोही, लोभी, अहंकार, अज्ञान में भटकता रहता है।

ध्यानाभ्यास में जो तुम्हारे भीतर होगा वही आरम्भ में प्रकट होगा। फिर ध्यान से देखते हुए उससे मुक्त रहना होगा।

ध्यान को आत्मस्वरूप ही समझो, जाग्रत अवस्था अज्ञान है, सुषुप्त अवस्था को प्रज्ञान कहा है, सत्यज्ञान स्वरूप अवस्थातीत है।

जब तुम सुखास्वाद लेते हो तब तुम्हीं सुख स्वरूप होकर कुछ बनते हो, तुम वही हो। सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही समझ सकते हो। आत्मा के बिना कुछ बन ही नहीं सकते।

आत्मा के ज्ञान की पूर्णता तभी होती है जब अज्ञान का अभाव होता है। अनात्मा से भरा अहंकार अज्ञान में है सद्गुरू समझाते हैं-

तुम्हारा स्वरूप शुद्ध चैतनय है इसी में मन को लीन करने के लिए सतत् अभ्यास की आवश्यकता है।

तुम अपने ज्ञान से मन की मान्यता को एवं मनन को हटाकर चेतन स्वरूप का ही स्मरण करते रहो।

चेतन आत्मा निरन्तर हैः मैं इसी में हूँ यही आत्मसाक्षात्कार है। खोज करो-यह 'मैं' कहाँ से प्रकट हो रहा है। यह 'मैं' ही जड़ चेतन की ग्रन्थि है।

ब्रह्म आत्मा ही सर्वमय है। तुम अपने मन के पीछे चेतन आत्मा को जानो। वह आत्मा क्षणभर के लिये भी मन को नहीं छोड़ता।

तुम सुखस्वरूप ही हो लेकिन सुखास्वाद के लिए इन्द्रियों का

सहारा लेकर पराधीन बनते हो।

अहंकार, चैतन्य ज्योति से प्रकाशित है, इसी के मध्य परमात्मा व्यवस्थित है। आत्मा में ही अहं स्फुरित हो रहा है।

तुम अपने को देह न मानकर, ज्ञानस्वरूप का स्मरण करते रहो।

असतसंग से मुक्त रहने के लिए संकल्प शून्य चैतन्य में बुद्धि को स्थिर करते रहो।

चेतन आत्मा में स्थिर होना एकान्त है।

अहंकार की मृत्यु के बाद आत्मा ही अवशेष रहती है यही आनन्द है, मृत्यु का अन्त है।

ज्ञानस्वरूप चेतन कहीं आता जाता नहीं अहंकार में ही जन्म-मृत्यु का भोग है।

वातावरण के लिये स्थान नहीं बदलना है, मन को ही बदलना है।

मन द्वारा देखने-भोगने की कामना त्यागकर मन को ही देखो। आत्मस्थ होकर रहो। सत्य आत्मा से ही सब कुछ

प्रकाशित देखो।

यह सभी नाम रूप, सारा जगत आत्मा चेतन का ही प्रकाश है। आत्मा के भीतर है। आत्मा अनन्त विभु सत् चेतन आनन्द सत्व है। सारा विश्व आत्मामय ही है। इसके बाहर कुछ नहीं है।

महाचिति, महासत्ता शुद्ध ज्ञानस्वरूप शिव अच्युत ही परम सत्य है।

जो देव सर्वत्र विद्यमान है और चेतन ज्ञानरूप से सब प्राणियें के भीतर है उसके लिए आवाहन विसर्जन मन्त्र आदि की आवश्यकता नहीं है। इसकी पूजा केवल ध्यान से होती है।

जिनकी बुद्धि चेतन नहीं हुई और जिनका चित्त चद्ञचल है केवल उन्हीं के लिए बाहरी देवपूजा की विधि है। (यो.वा.)

जब बुद्धि शुद्ध होती है तभी विनाशी में अविनाशी चेतन को देखना सहज ध्यान है।

नास्तिक को, कृतध्नी को, दुर्वुत्ति वाले पापी को इस ध्यान ज्ञान की बात नहीं बताना चाहिए। (यो.वा.)

सन्त वचन है कि तुम शान्ति चाहते हो तो यह देखो कि अशान्ति क्यों है, यह भी निश्चित है कि तुम इसीलिए अशान्त हो

क्योंकि कुछ चाहते हो, कोई प्रतिकूलता है। चाह को त्यागते ही तुम तत्काल शान्ति का अनुभव करोगे। कामना की अपूर्ति से ममता तथा आसक्ति के कारण जीव अशान्त होता है।

यदि तुम किसी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होना चाहते हो तो विचार करके देखो कि बन्धन में किसी ने नहीं बाँधा, तुम्हीं अपनी मान्यता के कारण मोह ममता में बँधे हो, किसी वस्तु के पीछे लोभ से बँधे हो। यदि तुम कुछ भी न चाहो, मुक्ति भी न चाहो तब चाहों का त्याग करते ही तुम अपने को मुक्त पाओगे।

चाह का त्याग तभी संभव है जब तुम अपने को नित्य निरन्तर पूर्ण सत्ता से, पूर्ण आत्मा परमात्मा से अभिन्न अनुभव करोगे- यह ज्ञान में ही सम्भव है। अज्ञान में ही बन्धन है, अशान्ति है।

इस मन को देखो, यह मन ही सब कुछ बनाता है, मिटाता है पर सत्य की रचना नहीं कर सकता। यह मन सत्य की, भगवान की कल्पना कर लेता है, भगवान की मूर्ति बना लेता है।

यह मन सुख को, दुःख को मान लेता हैं, भगवान को भी मान लेता है।

मन जिसे अपना मान लेता है उसी से सम्बन्ध जुड़ जाता है और सम्बन्धित वस्तु व्यक्ति के न रहने पर भी, छूट जाने पर भी मन में सम्बन्ध बना रहता है।

मन ही संयोग को सुखद मानकर सुखी होता है और सम्बन्ध विच्छेद होने पर दुःखी होता है। मन दुःखी न हो तो कोई दुःख नहीं दे सकता।

सर्वत्र एक अखण्ड चैतन्य आत्मा की ही सत्ता है। चेतन आत्मा के बिना अन्य कुछ है ही नहीं।

यह संसार संकल्प से ही उत्पन्न हुआ है। अहंकार ही बन्धन में और मुक्ति में हेतु है।

जिससे अहंकार, अभिमान, काम मिटे वही सत्कर्म है, सद्ज्ञान है।

क्षुब्ध चेतना मन है। शान्त चेतना ही आत्मा है।

जो इच्छाओं, कामनाओं की पूर्ति चाहता है वह गृहस्थ है जो इच्छा, कामना संकल्प का त्याग करता है वह विरक्त है।

ज्ञान से अज्ञान तो दूर हो जाता है परन्तु दुःख-सुख के बन्धन से मुक्त होने के लिए ज्ञान द्वारा अनासक्त होना अनिवार्य

है।

आत्मानुरक्ति से ही अनासक्ति सम्भव है। मन जब हृदय में लीन होता है तब आत्मानुभव होता है।

आत्म की चर्चा करने मात्र से ईर्ष्या, द्वेष, मोह, लोभादि का अन्त नहीं होता।

अपने सुख के लिए किसी से आशा करना भोग में पतन है। आत्मा अनात्मा का ज्ञान ही परमात्मा के बोध का द्वार है। मैं और मेरापने से मुक्ति ही परम मुक्ति है।

भीतर आत्माराम में विश्राम देखो तभी आनन्द मिलेगा। विनाशी नाम रूपों की याद आते ही भीतर शान्त हो जाओ।

मन दौड़ता है तब संसार है। मन जब ठहरता है तब परमात्मा है।

आत्मा ही परम तीर्थ है, शान्त मौन होकर ही कोई इस तीर्थ में पहुँचता है।

विचार से निर्विचार तक जाने के लिए नाम स्मरण, फिर चेतनस्वरूप का चिन्तन, इसके आगे वर्तमान में जो कुछ है, उसे देखते रहने के लिए सावधान रहो।

वस्तुओं व्यक्तियों के सहारे जीते रहना असत् संग है। तुम परमात्मा के सहारे अपने को सदा सुरक्षित समझो।

जो कुछ भी तुम्हें सुन्दर प्रिय प्रतीत हो उसके पीछे एक परमात्मा के ही सौन्दर्य को चमकते हुए अनुभव करो।

जीवन निरन्तर है इसे जानो ओर जिओ, चेतना में रहो। जब तुम किसी पर निर्भर हो तब परतंत्र हो।

जब तुम सुख को बाहर खोजते हो तब संसारी हो। जब भीतर स्वयं को जानते हो तब सन्यासी हो।

संसार के पदार्थ सबको समान नहीं मिले हैं, परन्तु परमात्मा से जो मिला है वह सबको समान मिला है।

दुखों को, विपदाओं को प्रभु की कृपा समझो क्योंकि वे संसार का सच्चा रूप बताकर स्वाधीन प्रसन्नता एवं आनन्द की ओर प्रेरित करते हैं।

यदि तुम निन्दा, स्तुति, लाभ, हानि, द्वन्द्वों में कर्तापने से मुक्त रह सको और कहीं सत्योपदेश न सुनकर स्वयं ही सत्य होकर रह सको तभी स्वतन्त्र स्वामी हो सकते हो।

यदि तुम ब्रह्म परमात्मा आत्मा को सत्य और जगत् को

मिथ्या नहीं मानते हो तो यह प्रथम पाप है।

सत् चेतन स्वरूप में बुद्धि स्थिर न रहने पर ही प्रतिकूल शब्दों का या घटना का प्रभाव दोषी बना देता है।

अहंकार को कृतज्ञता, नम्रता, प्रसन्नता, शान्ति सन्तोष से भरे रहना परम हितकर है।

सन्त में श्रद्धा तभी महत्वपूर्ण है, जब विवेक जाग्रत होता है। सेवा तथा त्याग की पूर्णता तभी होती है जब विवेक साथ होता है।

वस्तु व्यक्ति देहादि को अपनी न मानना विवेक द्वारा ही संभव है। विवेक न हो तब वस्तु व्यक्ति का त्याग भी भोग हो जाता है।

सन्त संग से यदि विवेक जाग्रत नहीं होता तब श्रद्धावान साधक सन्त को नहीं चाहता वह सन्त से कुछ चाहता है।

विवेक द्वारा ही मोह तथा भ्रम की निवृत्ति होती है। जब अहंकार अपने को विवेकी मान लेता है तब मोह तथा भ्रम की निवृत्ति नहीं होती। मोह तथा भ्रम का अन्त हुए बिना भगवान के प्रति अनुराग अथवा परमात्मा के प्रति प्रेम नहीं हो पाता।

विवेक द्वारा ही शान्ति अपने लिए और शक्ति सेवा के लिए

समझ में आ जाने पर ज्ञान योग, कर्म योग पूर्ण होता है।

विवेकी को कोई वस्तु अपनी नहीं दीखती। इसीलिए सेवा करते हुए वह त्याग का या दान का अभिमानी नहीं होता।

बहुत गम्भीरता से विचार करने पर दीखता है कि हम कितने अधिक मन में मूढ़ता और बुद्धि में मूर्खता लिए हुए साधक हैं। क्योंकि हम भगवान को तो मानते हैं परन्तु भगवान ने जो कहा है उसे कहीं मानते हैं।

भगवान् घर, परिवार, धन आदि छोड़कर वन जाने को नहीं कहते, वे तो ममता, आसक्ति, कामना, सुख, स्पृहा छोड़कर निष्काम होकर कर्म द्वारा भोगी न बनकर नित्य आत्मा के योगी होने को कहते हैं।

भगवान राग, भय, क्रोध, द्वेष रहित होकर आशा रहित, सन्ताप रहित होकर, अहंकार रहित होकर, द्वन्द्वों से मुक्त रहकर, आत्मवान होकर सबसे असंग अलिप्त रहने को कहते हैं। भगवान के मतानुसार विषय चिन्तन, आसक्ति, कामना, क्रोध, मूढ़ता तथा स्मृति भ्रम से बुद्धि नष्ट होती है। राग द्वेष रहित इन्द्रियजित योगी को स्वाधीनता, प्रसन्नता प्राप्त होती है।

सन्त का निर्णय है कि तुम अपने को जहाँ मानते हो वहीं परमात्मा है लेकिन जो कुछ अपना मानते हो वह तुम्हारा नहीं है। प्राणी प्रकृति में लीन होते हैं और प्रकृति परमात्मा में लीन होती है।

यदि तुम भय, चिन्ता, अशान्ति एवं दुःख से मुक्त होना चाहते हो तो अब कुछ पाने का संकल्प न करो। संकल्प भूत-भविष्य से सम्बन्धित रहता है और भगवान आत्मा परमात्मा सदा वर्तमान में ही है।

परमात्मा को तुम किसी के द्वारा नहीं पा सकते। परमात्मा का बोध तो स्वयं अपने आप में ही होता है।

आत्मा परमात्मा का योग निरन्तर है ही, होना नहीं है। संयोग अपने से भिन्न का होता है, इसीलिए उसका वियोग होता है।

अहंकार ही संयोगी-वियोगी होता है।

हृदय में प्रेम रहता है, मन में मोह होता है।

बुद्धि में श्रद्धा होती है।

श्रद्धा की पूर्णता ज्ञान से होती है।

ज्ञानस्वरूप तत्व ही गुरू है। वस्तु एवं व्यक्ति में प्रीति होना श्रद्धा होना, मूर्खता है, मूढ़ता है।

गीता के मतानुसार जो तत्व ज्ञानी है वह कर्मों से नहीं बँधता है।

ज्ञानी पण्डित वही है जो कामना रहित है, शोक रहित समस्थित रहता है।

ज्ञानवान किसी का आश्रय न लेते हुए नित्य तृप्त रहता है, असंग रहकर कर्म होते देखता है, स्वयं अकर्ता रहता है।

एक सन्त का मत है-जीव ब्रह्मं नहीं हो सकता। ब्रह्म जीव नहीं होता।

ब्रह्म ही ब्रह्म होता है।

स्वयं शरीर नहीं हो सकता, शरीर स्वयं नहीं हो सकता।

स्वयं तो स्वयं ही है और शरीर तो शरीर ही है।

देहाभिमान रहते भक्ति मुक्ति नहीं पा सकता।

देहाभिमानी, मोही, लोभी, कामी, क्रोधी, ईर्ष्यालु, द्वेषी, द्वन्द्वसे मुक्त होता ही नहीं इसलिए भजन नहीं हो पाता।

भजन तभी होता है जब संयोग, वियोग, लाभ हानि, सुख-दुख आदि द्वन्द्वका प्रभाव नहीं पड़ता द्वन्द्वका प्रभाव तभी नहीं पड़ता जब पाप का अन्त होता है। पाप का अन्त तभी होता है जब अज्ञान का अन्त होता है।

जो ज्ञान संसार में फँसाता है, जो ज्ञान मोही, लोभी, अभिमानी बनाता है, वह ज्ञान असत् आनित्य से सम्बन्धित है। जिस ज्ञान से पराधीनता का अन्त होता है, स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, वही सद्ज्ञान है। इन्द्रियों द्वारा विषयों का ज्ञान, मन द्वारा विषयों का ग्रहण तथा बुद्धि द्वारा मन का ज्ञान और आत्मा द्वारा बुद्धि वृत्तियों का ज्ञान, किसी प्रकार के सुख-दुःख का ज्ञान शब्द, स्पर्श, रूप रसादि का ज्ञान दोष नहीं है। मूढ़तावश अहंकार सब प्रकार के ज्ञान का भोगी बन जाता है।

किसी प्रकार के ज्ञान द्वारा रागी द्वेषी बन जाना दोष है। आत्मा के ज्ञान से ही दोषों का अन्त होता है।

जब चेतना विज्ञानमय कोष को प्रकाशित करती है तब

अखण्ड सद्ज्ञान में सर्वत्र परमात्मा के होने का तथा परमात्मा की ही पूर्णता का बोध होता है।

इस ज्ञान में ही 'मैं हूँ' परमात्मा में ही हूँ और सब कुछ भला-बुरा परमात्मा में ही है, ऐसा निश्चय होने से परम शान्ति सुलभ होती है।

ममता, आसक्ति कामना के रहते जन्म लेना ही पड़ता है, पराधीन होना ही पड़ता है।

संसार के सभी ज्ञान भोग के लिए ही होते हैं, वह व्यर्थ ही है। आत्माज्ञान ही भोगों से मुक्ति दिलाता है।

प्रसन्न रहने का स्वभाव बना लो, शान्त रहो, मौन रहो, मन को देखते रहो।

कोई चोर हो, व्यभिचारी हो, दुष्ट हो, उसे देखकर भाव को अपवित्र न करो क्योंकि सब परमात्मा जानता है। तुम अपने को देखो।

अन्धकार को, अज्ञान को जो जानता है। वह प्रकाश है, ज्ञान ही है।

परमात्मा की प्यास जहाँ होती है, पूर्ति वहीं भीतर से होती है।

जो खोज रहा है, जिसे खोज रहा है, दोनों एक ही हैं।

निर्विचार, निर्विकल्प, शून्य होने पर सत्य का बोध होता है।

'जो सत्य मैं हूँ उसे पाने का कोई मार्ग नहीं है।'

घोर अशान्ति में एक केन्द्र ऐसा है जहाँ पूर्ण शान्ति है।

अविनाशी आनन्द में होते हुए भी अहंकार अशान्त होता है-यह आश्चर्य है।

चेतन शुद्ध चेतना ही तो विस्तार को लिए हुए ब्रह्म है। विचार मात्र स्वयं चेतना नहीं है। मैं शुद्ध साक्षी ब्रह्म हूँ-यह विचार है, इसे जो जानता है वो चैतन्य ही ज्ञान स्वरूप है।

भगवान के मतानुसार अज्ञान का अन्त वही कर पाता है जो आत्मवान होता है।

आत्मवान वही होता है जो किसी अन्य से सम्बन्धित नहीं रहता।

परमात्मा जीवात्मा का अखण्ड सम्बन्ध है। इसीलिए

जीवात्मा को अनित्य सुख रहित शरीर द्वारा परमात्मा के भजन की प्रेरणा गीता में दी गई है।

हम माला द्वारा जप करने को तथा स्वर ताल से नाम कीर्तन को, भजन मानते थे, लेकिन कई वर्ष इस प्रकार भजन, कीर्तन, पूजा, पाठ, सत् कथा श्रवण, तीर्थ सेवन आदि शुभ कर्मों को करते हुए सन्त संग से ज्ञात हुआ कि जब तक ज्ञान में कामना भरी है तथा विनाशी नाम रूप भरे हैं एवं प्रीति में कुछ भी सुखद प्रतीत होता है, जब तक ज्ञान माने हुए सम्बन्धों से मुक्त नहीं होता और प्रीति, ममता आसक्ति से भरी रहेगी तब तक भक्ति योग, ज्ञान योग नहीं हो सकता और योग हुए बिना भक्ति भाव का तथा ज्ञान का अहंकार भोगी बना रहेगा।

देखो चेतना ही तो 'हम' रूप में प्रस्फुटित हो रही है। चेतना ही शुद्ध ज्ञान है। जिसमें सारे ज्ञान अज्ञान दोनों प्रकाशित होते हैं।

शून्य का द्रष्टा ज्ञान ही तो है।

अहं ब्रह्मस्मि विचार मात्र है। ब्रह्म तो कहता नहीं तब कौन कहता है।

समस्त संकल्पों की उत्पत्ति अहं भाव से होती है। ध्यान से

देखो तभी संकल्प शान्त होंगे।

अहं के स्रोत को जानो तभी स्थिरता होगी अहं को देहाकार न रहने दो। अहं ज्ञान में यह जो कुछ भी है इसे न रहने दो।

आनन्द तुम्हारा स्वरूप है इसे ही आरम्भ में बार-बार स्मरण करो। देहाध्यास का त्याग करो।

आनन्द में रहते हुए मन सुख-दुःख मानता रहता है - इसे ध्यान से देखो।

ज्ञानवान आत्मवान वही है जो निरन्तर व्यापक चेतन के ध्यान में रहता है।

जीवन अनन्त ऐश्वर्यपूर्ण क्षण-क्षण परिवर्तनशील सनातन चेतना है।

सन्त कहते हैं कि तुम इस जीवन को जानो और जियो, सदा सभी के समक्ष निर्भय रहकर आनन्द अनुभव करो। पक्षी तुम्हारी तरह बुद्धिमान विद्वान नहीं है परन्तु वह भयभीत नहीं है, वह प्रसन्नता से उड़ता है, जब भी मृत्यु आती है, वह स्वीकार कर लेता है।

जिसे तुमने अपना माना है, यदि उसे तुम निरन्तर सर्वत्र

अपने साथ रखने में समर्थ होते तब मृत्यु से भयातुर न होते। प्रतिक्षण प्रतिदिन चेतना का अनुभव करो, किसी वस्तु की सुरक्षा का चिन्ता न करो, प्रत्युत देखते रहो कि कब क्या छूटता है और कुछ भी छूट जाने के पश्चात् निरन्तर साथ क्या रहता है?जो रहता है वही तो सत् चेतन अविनाशी आत्मा है इसी चिद्तत्व में सब कुछ प्रकाशित हो रहा है।

यदि तुम अभी से बिना शास्त्र पढ़े ही अपने मन को देखते रहो, शान्त मौन रहकर देखो तब वहाँ सब कुछ विद्यमान पाओगे।

ज्ञान में वस्तु को, व्यक्ति को देहादि को, अपनी न मानो। अपने आपको परम आत्मामय चेतनमय अनुभव करने से अखण्ड आनन्द अनुभव होना सम्भव है।

यदि बुद्धि शुद्ध है, मोह रहित है तब सारा विश्व परमेश्वर की देह के रूप में दीखने लगता है।

तभी सन्त गाते हैं -

जड़ चेतन जय जीव जत सकल राममय जानि।
बन्दौं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।

पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पाँच तत्व मन बुद्धि अहंकार और जीव यह नौ प्रकार की देह परमेश्वर का विराट रूप है।

इस विश्वमय ब्रह्म के साकार रूप को तत्वदर्शी जानता है। सर्वात्मा को सम्पूर्ण रूपों में देखना ही विश्व रूप का दर्शन है।

प्रत्येक पदार्थ में एक शक्ति रहती है उसी को तत्ववेत्ता, महेश्वरी और पदार्थ को महेश्वर रूप में देखते हुए नमस्कार करते हैं। ज्ञान में न देख सकने वाले अज्ञानी जन पदार्थों के मोही लोभी बने रहते हैं।

ज्ञानवान वही है जो बाह्य विषयों के भोगों में आसक्त न रहकर आत्मानन्द का अनुभव करते हैं।

सद्गुरू सावधान करते हैं कि इस देह में अन्तःकरण को हृदय को ब्रह्मपुरी समझो, इसमें राक्षसों को, पशुओं को न रहने दो। इस ब्रह्मपुरी में नौ द्वार हैं। इसी को द्वारिका अयोध्या कहते हैं। यह नगरी शक्तियों का कोष है। देवों का वासस्थान है। इसी में चेतन स्वरूप आत्म देव प्रतिष्ठित हैं। इस देव को जो जानता है उसी को ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। इस ब्रह्मवेत्ता की सहायता,

आत्मज्ञानी की सहायता वह देवता करते हैं जो आँख, कान आदि इन्द्रियों में रहते हैं। तुम सत् तत्वदर्शी होकर रहो नाम रूप में न अटको।

जिससे आत्मा-परमात्मा की एकता का दर्शन हो उसी को ज्ञान कहा गया है।

सभी नाम रूपों में परमात्मा का अनुभव करना विज्ञान कहा गया है।

जो आदि, मध्य, अन्त को प्रकाशित करते हुए प्रलय में शेष रह जाता है वही सत्य है।

जिस प्रेम में भगवान से अभिन्नता का बोध हो वही भक्ति है।

जिस कर्म से भक्ति सुलभ हो वही धर्म है।

जब विषयों में आसक्ति न रहे तभी वैराग्य है।

किसी व्यक्ति या वस्तु को सुखदाता या दुखदाता मानना भ्रम है। जो अपना नहीं है, जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है उसे अपना मानना भ्रम है। किसी वस्तु को सुखद मानना भ्रम है।

देखो गुणाकार दोषाकार चित्त तुम्हारे साथ ही है उसी में गुण-दोष बहुत है, तब तुम अपने में ही गुण-दोष का निरीक्षण करो। दूसरों का चित्त तुम्हारी दृष्टि में नहीं है। दूसरों की निन्दा स्तुति न करो। परमात्मा से विमुख होकर ही कोई दूसरों के गुण-दोष की चर्चा करता है।

संत मतानुसार यदि आत्मा-परमात्मा के चिन्तन का अभ्यास दृढ़ कर लो तो फिर चित्त में भय, दु:ख, रह ही नहीं सकते।

भगवान ने कहा है कि ' मैं ही सबका आत्मा हूँ मेरे बिना सब शव हैं।' यह देह तो शव है इसमें चेतन स्वरूप शिव को जान लो।

भगवान ने यह भी कहा है कि जो, मुझे छोड़कर किसी दूसरी वस्तु के लिए दौड़ता है वह विवेक रहित मूर्ख है, उसे केवल दु:ख ही हाथ लगता है।

सन्त निर्णय है कि जो आत्मवेत्ता तत्वदर्शी हैं वे-

राव रंक को सम गिने कुछ आशा नाहीं।
आठ पहर सिमटे रहें अपने ही माहीं।।

जिस शक्ति से तुम सत्य को, परमात्मा को कुछ करके पाना चाहते हो वह परमात्मा ही शक्ति के रूप में तुम्हारे साथ है।

जिस ज्ञान से तुम सत् परमात्मा को जानना चाहते हो वह परमात्मा ही ज्ञान रूप में तुम्हारी बुद्धि में प्रकाशित हो रहा है।

जिस प्रेम से परमात्मा को देखना चाहते हो वह परमात्मा ही तुम्हारे साथ प्रेम के रूप में है।

परमात्मा है तभी तो तुम हो, जहाँ तुम, मैं या हम कह रहे हो वहीं परमात्मा मौजूद है फिर भी तुम कहीं खोजने जाते हो। जहाँ हो वहाँ नहीं देखते यही भ्रम है।

अभी देखो, तुम्हारे ज्ञान में जब कुछ भी स्मरण करते को नहीं रहता तब परमात्मा ही शेष है यही शेषशायी विष्णु है। तुम्हारे प्रेम में जब कोई प्रेम-पात्र नहीं रह जाता तब यह प्रेम ही परमात्मा है। यह परमात्मा ही अनादि है, अनन्त है।

कहीं जाकर कुछ करने से सत्य परमात्मा नहीं मिलता, सत्य परमात्मा तो प्रेम में ही विद्यमान है, आनन्दस्वरूप है।

जो कुछ दीखता है सभी में परमात्मा की ही सत्ता है, सभी गतियों के पीछे, सभी कृतियों के पीछे, अहंकारों के साथ परमात्मा की ही चेतना है। देखो! तुम्हारे साथ सत् चेतन आनन्द है या नहीं है?

सावधान रहकर सभी में और अपने आप में भी परमात्मा को प्रणाम करो।

अनादि परमात्मा से ही अथारम्भ होता है, मध्य में सत्य परमात्मा ही सब कुछ धारण करता है और सब कुछ के अन्त में परमात्मा ही अनन्त शेष रहता है।

तुम्हारे आदि, मध्य, अन्त में परमात्मा ही हैं।

सुनकर स्वीकार कर लेना ही व्यक्तित्व की सीमा है। गीता में लिखा है कि तुम विनाशी में अविनाशी को देखो। व्यक्तित्व का मोह छोड़ो तभी वासनाओं का अन्त होगा और तभी बुद्धि में समता, हृदय में निर्भयता, चित्त में स्वाधीन प्रसन्नता सुलभ हो सकती है। व्यक्तित्व के त्याग में सत्य शेष रहता है।

अनेक अभिमानों के साथ गुणों का अभिमान व्यक्तित्व के

मोह को पुष्ट करता है; इसे मोही, बने हुए त्यागी, सन्यासी, बने हुए साधु-महात्मा प्रायः नहीं देख पाते।

व्यक्तित्व का महत्व बढ़ाने के लिए बने हुए साधु -सन्यासी अविवेकवश, स्वावलम्बन, सदाचार, समाज सेवा, देश सेवा, परोपकार आदि सद्‌गुणों के अभिमानों से अहंकार को पुष्ट रखते हैं।

सन्त सद्‌गुरू ने समझाया है कि व्यक्तित्व के मोह में विद्वान को विद्यार्थियों का, बलवान को निर्बलों का, उपदेशकों को, प्रचारकों को, श्रोताओं का आश्रय लेना पड़ता है-इस परापेक्षा से कोई आत्मवान ही मुक्त रहते हैं।

सन्त कहते हैं अपने को पढ़ो और देखो ! सर्वात्मा ही ईश्वर है। संकीर्णता छोड़कर सर्वात्मा को संतुष्ट प्रसन्न देखने के लिए सेवा होने दो यही ईश्वर की आराधना कही गई है।

सर्वत्र अभी यहीं आत्मा-परमात्मा के होने का स्मरण करते रहो-यही सत्योपासना सन्त ने बताई है।

भागवत में बताया है कि जो धर्मज्ञ श्रद्धावान धीर पुरूष है

वह ब्रहचर्य, इन्द्रिय दमन, स्थिर मन, तप, त्याग, सत्याचरण, शुचिता, यम नियम इन नौ साधनों द्वारा मन से, वाणी से, तन से किये गए पापों को उसी तरह नष्ट कर देता है जिस तरह बाँसों को लगी आग नष्ट कर देती है।

सन्त का कहना है -

कान वह कान है जिसने तेरी आवाज सुनी।
आँख वह आँख है जिसने तेरा जलवा देखा।।

नृत्य वही जिसमें आवाज न हो और सन्नाटा वही जिसमें नृत्य सुनाई दे।

ध्यान में स्वाभाविक नेत्र बन्द हो जाते हैं, इसीलिये कि बाहर तो पाने योग्य कुछ भी नहीं है।

बाहर देखना बन्द होने पर भीतर देखना आरम्भ होता है। बाहर आँख खुलते ही भूताकाश में अगणित आकार प्रकार दीखते रहते हैं। बाहर की आँख बन्द करने पर भीतर चित्ताकाश में जो चित्र भरे हैं वही न चाहने पर दीखते हैं। भीतर मन की दृष्टि को संयमित रखने पर प्रज्ञादृष्टि से चिदाकाश में अनन्त

चेतना का अनुभव होता है। चेतना के विपरीत सम्बन्धित नामरूपों में जब किसी का स्मरण होता है तब याद रहे, वह अपना नहीं है वह सदा नहीं रहेगा। जो अपना आप है उसी का स्मरण सत्य का स्मरण है।

देह में चेतन ज्ञानस्वरूप तो निरन्तर है ही परन्तु ज्ञान में अनेक सम्बन्ध भर गए हैं, वे अपने मालूम पड़ते हैं, इस भ्रम को, मोह को, अज्ञान को सद्‌विवेक द्वारा मिटाना ही साधक का कर्तव्य है। यदि ज्ञान दृष्टि से देखना आ जाये तब तो भगवान सर्वत्र है। सभी हृदयों में आत्मा भगवान ही है। यह हृदय ही भगवद्धाम है। अज्ञान में मन की मूढ़तावश अहंकार बाहर के धामों में भटकता है।

अपने को पढ़ो और देखो प्रायः तुम चाहते हो कि लोग मुझे अच्छा ही समझें, बुरा न समझें, मान ही दें, अपमान न करें, प्रशंसा करें, निन्दा न करें। तुम अनुमान मात्र से ही अशान्त हो जाते हो, क्योंकि अहंकार भिखारी है, दरिद्र है, मूढ़ है।

अब तुम किसी को बुरा न समझो, बुरा न कहो, बुराई न

सुनो। क्या ऐसा हो सकता है?संत ने समझाया है कि जगत के आकार में आत्मा को देखो इसी की सत्ता से सब कुछ प्रकाशित है। मन का आत्मामय होना ही साक्षात्कार है।

ईश्वर और चेतन आत्मा को एक ही जानो। विचार भी आत्मा में आत्मा के द्वारा होता है।

जहाँ विभक्ति है वहाँ भक्ति की आवश्यकता है। जहाँ संयोग-वियोग है वहाँ योग की आवश्यकता है। जहाँ सुख-दुःख की वेदना है वहीं शांति की आवश्यकता है।

शुद्ध चैतन्य सचेतनता, अचेतनता से परे है। प्रबल दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि मैं चेतन आत्मा हूँ। आत्मा ही स्वयं अनुग्रह स्वरूप है यही सब कुछ के आदि में है, मध्य में है, अन्त में है। आत्मा ही ज्ञानस्वरूप गुरू है।

सन्त समझाते हैं कि मन की मूढ़तावश तुम 'मैं' को जाने बिना ही कब से 'मैं' का प्रयोग कर रहे हो। अब द्रष्टा होकर ही ध्यान से देखो। समस्त दृश्यों के मूल में विद्यमान सत् सत्ता को कहीं न भूलो। श्वास का जहाँ से उदय होता है वहीं मन का मूल

है, वहीं मन का लय होता है, तभी ज्योतिर्मय मन प्रकट होता है, इसे ध्यान से देखो।

संसार में परमात्मा को और परमात्मा में संसार को समझ लेना है। सत् असत् सब परमात्मा है, अन्त में न सत् है न असत् है, जो है वह अनिर्वचनीय है।

जो है वह यह नहीं कहता कि मैं हूँ। झूठा मैं ही सब कुछ बनता है। अज्ञान का निवारण करो बस ज्ञान ही ज्ञान है।

आत्मा का सहज स्वभाव आनन्द है, आनन्द में होते हुए भी मन सुख-दुःख की सृष्टि रच लेता है।

परमात्मा सबके साथ सर्वत्र सब में है, इस सत्य रूप को तत्व को नमस्कार है। इस ज्ञान स्वरूप तत्व को नमस्कार है।

इसी में सबका जीवन है। इस ब्रह्मानन्द स्वरूप तत्व को नमस्कार है।

आत्मा के अज्ञान से ही सारे दुःख हैं। आत्मा के ज्ञान से ही दुःखों का अन्त है। आत्मा माने अपने आप स्वयं। केवल ज्ञान में

ठहरो।

संकल्प युक्त परम आत्मा ही मन है। मनन से मुक्त ज्ञान ही आत्मा है। कोई देवता विचारहीन पुरूष को आत्म् ज्ञान नहीं दे सकता। अहंभाव के उत्पत्ति स्थान का पता लगाने से शुद्ध आत्मा का पता लग जाता है। ब्रह्म ही अहं के रूप में में स्फुरित हो रहा है।

केवल ज्ञान में ठहरो। सीमातीत पूर्ण अहं चेतन ही आत्मा है। प्रकृति, मन, जगत का ब्रह्म से तादात्म्य सम्बन्ध है। ब्रह्म से अभिन्न यहाँ कुछ भी नहीं है। अन्य भी कुछ नहीं है। ब्रह्म ही जगत के रूप में दिखाई देता है। सबको नहीं। यह सन्त मत है कि यदि मन में इच्छा न हो तब तुम चेतन आत्मा में स्थित रहकर यथाप्राप्त कर्म करते हुए आनन्द का अनुभव कर सकते हो।

अपने को कुछ भी मानना बन्धन है। सुन-सुनकर मान लिया है। अब समझ में आ जाये तब आत्म देव के अतिरिक्त किसी की आराधना न करो। संसार में कुछ अपना न मानो।

जब परमात्मा ईश्वर सबके हृदय में निवास करता है तब बाहर खोजना मूर्खता है। ध्यान से देखो, मूर्खता छोड़ो। यह मन चेतना आत्मा का ही अंश है।

मन के मनन का अन्त होने पर आनन्दानुभव होता है। चित्त के शान्त और शून्य होने पर आत्मानुभव होता है। शब्द रूप स्पर्श रसादि विषय सुखों में आसक्ति रहते शास्त्र वेद के विद्वान को भी आत्मानुभूति नहीं होती।

आत्मज्ञानी ही पापों से मुक्त होता है। यह आत्मज्ञान निरन्तर अभ्यास करने पर कालान्तर में अपने में ही प्राप्त होता है। ज्ञान रूपी नौका पाप सागर को पार करने का साधन है लेकिन कुछ विद्वान इसे सर पर लिये ही जीवन बिता रहे हैं।

सन्त कहते हैं आँखों से पढ़ो और बुद्धि दृष्टि से देखो।

हम आँखों से देखने को ही देखना मानते थे और वर्णमाल के अक्षरों को पढ़ना समझते थे। सन्त संग से समझ में आ रहा है कि आँखों से मनुष्य की अपेक्षा पशु-पक्षी अधिक दूर तक देख लेते हैं और अशिक्षित वृद्धों को पढ़ना नहीं आता, शिक्षित

बालक पढ़ लेते हैं। परन्तु जीवन को पढ़ने की शिक्षा और जीवन के सत्य को देखने की आँख किसी-किसी को सुलभ होती है। सन्त सद्गुरू ने समझाया कि आँख से देखते हुए जो कुछ तुम्हें सुन्दर प्रतीत होता है उसे ही देखने की कामना होती है, उसे देखकर तुम्हें सुख मिलता है और उसी सुन्दर रूप-रंग की याद आती है लेकिन जिन आँखों से देखते हो उन आँखों की याद नहीं आती ।

जिन कानों के द्वारा मधुर स्वर में गीत सुनते हो वह गीत याद आते हैं परन्तु जिन कानों से सुनते हो वह कान याद नहीं आते। इस प्रकार रसना द्वारा प्रिय लगने वाले स्वादिष्ट पदार्थ याद आते हैं लेकिन रसना याद नहीं आती। कई प्रकार की सुगन्धित वस्तुएँ याद आती हैं। परन्तु जिस नासिका से भिन्न-भिन्न गन्ध प्रतीत होती है वह नासिका याद नहीं आती। स्पर्श याद आता है त्वचा याद नहीं आती। अन्त में इस चेतना को देखो जिसके द्वारा नेत्रों से रूप देखा जाता है। त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। रसना से स्वाद का ज्ञान होता है। इस चेतना द्वारा नासिका से विविध गन्धों का ज्ञान होता है।

तुम इस नित्य सुलभ चेतन देव को देखो जिसके होने से त्वचा द्वारा विविध स्पर्शों का ज्ञान होता है, इसकी ही सत्ता से मन सुने हुए, देखे हुए, स्वाद लिये हुए का मनन करता है, चित्त चिन्तन करता है। बुद्धि विचार करती है और अहंकार अपने माने हुए क्षुद्र संसार का भोगी बनकर प्रीतिपूर्वक रसास्वाद में आसक्त रहता है और सुखासक्ति के कारण ही दुःख भोगता है।

सन्त सद्गुरू ने समझाया कि तुम किसी महात्मा के चमत्कार की चर्चा सुनते हो उसी सिद्धि प्रसिद्धि से आकर्षित होकर दर्शन के लिये जाते हो। कुम्भ में अनेक त्यागी, तपस्वी, ज्ञानी विज्ञानी, सिद्ध महात्माओं को सुनते हो, उनसे मिलते हो और कभी-कभी तुम भी ऐसे ही महात्मा बनना चाहते हो। इस अज्ञान का ज्ञान द्वारा अन्त करो।

अब तुम्हारे भीतर ज्ञान दृष्टि खुल रही हो तो देखो ! तुम्हारे साथ महान आत्मा महात्मा है जो सभी प्रकार की सिद्धियों से संयुक्त है।

यह महात्मा महान त्यागी है, कुछ भी ग्रहण नहीं करता। तुम

खाते-पीते हो परन्तु यह महान आत्मा कुछ नहीं खाता-पीता। तुम क्या-क्या पहनते-ओढ़ते हो यह कुछ भी नहीं पहनता-ओढ़ता। तुम सुखी, दुःखी, हर्षित, शोकित होते हो परन्तु यह कभी कुछ नहीं होता। तुम सोते हो यह महान आत्मा सदा जागता रहता है तुम जहाँ जाते हो, यह महात्मा सदा साथ ही रहता है। तुम सदा कुछ न कुछ चाहते रहते हो पर यह महात्मा कुछ भी नहीं चाहता। इस महान आत्मा की शक्ति से ही तुम सब कुछ करते हो।

इसी महात्मा के द्वारा तुम्हारी सभी चाहों की पूर्ति होती रहती है। आश्चर्य है कि यह महान आत्मा तुम्हें सदा देखता जानता है पर तुम इसे सदा नहीं देखते इसे नही जानते। क्या अब इस महात्मा का स्मरण रहेगा?

तुम साधना में तत्पर रहकर शुद्ध अन्न का, शुद्ध जल का तथा शुद्ध घृत का ही प्रयोग करो क्योंकि अन्न के स्थूल भाग से मल, मध्यम से मांस, सूक्ष्म से मन बनता है। जल के स्थूल भाग से मूत्र, मध्यम से रक्त, सूक्ष्म से प्राण बनते हैं। घी के स्थूल भाग

से अस्थि, मध्यम से मज्जा सूक्ष्म से वाणी बनती है।

आहार विहार विचार के शुद्ध रहने पर बुद्धि शुद्ध रहती है। शुद्ध स्थिर बुद्धि द्वारा श्रवण मात्र से ही साधक आत्मस्थ रहता है।

यदि बुद्धि, ममता, लोभ, कामना से अशुद्ध है तब गुरू उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता है।

तुम शुद्ध एवं स्थिर बुद्धि द्वारा देह को ही देवालय शिव मन्दिर समझो और इसमें जीव को शिव से भिन्न न मानकर नित्य चेतनस्वरूप निश्चय कर लो यही चिन्तन करो। मेरा पने से रहित जो ज्ञान मात्र शेष रहता है वही आत्मा है। बहिर्मुख देहाभिमानी जन इस शेष चेतन आत्मा को नहीं जान पाते। हृदय में आत्मा-परमात्मा के होने से नहीं प्रत्युत आत्मा-परमात्मा के स्मरण से दुःख मिटते है।

भगवान ने बताया है कि और कुछ करने की सुविधा न हो तो जड़-चेतन सभी में परमात्मा की सत्ता का मनन चिन्तन करते हुए मन से सभी का भला चाहो, सभी में मन से नमस्कार करो।

भगवद भाव से पत्र पुष्पादि से किसी को तृप्त करना द्रव्य यज्ञ है।

धर्माचरण में धैर्यपूर्वक कष्ट सहना तपोयज्ञ है।

यम नियम प्राणायामादि योग यज्ञ है।

शास्त्रों को पढ़ते हुए अपना अध्ययन स्वाध्याय यज्ञ है। सत्वर्चा प्रवचन, आत्मा अनात्मा का निर्णय ज्ञान यज्ञ है। गुरू जन, आसक्ति को कभी जीर्ण नहीं होने वाला बन्धन बताते हैं। श्रद्धावान शिष्य को वस्तु त्यागने को नहीं कहते प्रत्युत किसी वस्तु व्यक्ति को अपनी न मानते हुए आसक्ति छोड़ देने को कहते हैं।

तुम जब चाहो तभी आसक्ति ममता रहित हो शान्ति प्राप्त कर सकते हो। शान्ति पाने के लिये कहीं बाहर न भटकते रहो प्रत्युत अशान्ति को हटाते रहो। अपने आप चेतन स्वरूप में परमात्मा को प्रतिष्ठित अनुभव करो।